—संयम तथा ब्रह्मचर्य-संबंधी विचार—

पहला भाग

मोहनदास करमचंद गांधी

●

१९६२
सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की सहमति से

छठी बार : १९६२
मूल्य
्या

मुद्रक
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी, अजमेर

प्रकाशकीय

'ब्रह्मचर्य' पुस्तक का यह छठा संस्करण है। इसमें गांधीजी के ब्रह्म-चर्य तथा संयम-विषयक मुख्यतः उन लेखों का संग्रह है जो उन्होंने १९३६ से १९३८ तक के समय में लिखे थे। इसी विषय के १९३५ तक के लेख 'अनीति की राह पर' नामक पुस्तक में प्रकाशित हो चुके हैं। १९३५ तक के जो लेख 'अनीति की राह पर' पुस्तक में आने से रह गये थे, वे भी इसमें सम्मिलित कर लिये गये हैं। शेष रचनाएं 'ब्रह्मचर्य' (भाग २) में दी गई हैं।

इस प्रकार इन तीनों पुस्तकों में गांधीजी के ब्रह्मचर्य-विषयक लगभग सभी लेख आगये हैं। इन तीनों पुस्तकों को मिलाकर 'आत्म-संयम' के नाम से 'गांधी-साहित्य' के नवें भाग के रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

विषय और सामग्री की दृष्टि से ये पुस्तकें स्थायी महत्व की हैं; और आज जबकि जनसंख्या के असाधारण गति से बढ़ जाने और आर्थिक दबाव के कारण लोगों का ध्यान संतति-निग्रह की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो रहा है, इन पुस्तकों की उपयोगिता के बारे में दो मत हो नहीं सकते।

—मंत्री

विषय-सूची

ब्रह्मचर्य

: १ :

ब्रह्मचर्य

हमारे व्रतों में तीसरा ब्रह्मचर्य-व्रत है। वास्तव में देखने पर तो दूसरे सभी व्रत एक सत्य के व्रत में से उत्पन्न होते हैं और उसी के लिए उनका अस्तित्व है। जिस मनुष्य ने सत्य को वरा है, उसीकी उपासना करता है, वह दूसरी किसी भी वस्तु की आराधना करे तो व्यभिचारी बन जाता है। फिर विकार की आराधना की तो बात ही कहां उठ सकती है? जिसकी कुल प्रवृत्तियां सत्य के दर्शन के लिए हैं, वह संतानोत्पत्ति के काम में या घर-गिरस्ती चलाने के झगड़े में पड़ ही कैसे सकता है? भोग-विलास द्वारा किसी को सत्य-प्राप्त होने की आज तक हमारे सामने एक भी मिसाल नहीं है।

अथवा अहिंसा के पालन को लें तो उसका पूरा पालन ब्रह्मचर्य के बिना असाध्य है। अहिंसा अर्थात् सर्वव्यापी प्रेम। जहां पुरुष ने एक स्त्री को या स्त्री ने एक पुरुष को अपना प्रेम सौंप दिया वहां उसके पास दूसरे के लिए क्या बच रहा? इसका अर्थ ही यह हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब बाद को।' पतिव्रता स्त्री पुरुष के लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्री के लिए सर्वस्व होमने को तैयार होगा। अतः यह स्पष्ट है कि उससे सर्वव्यापी प्रेम का पालन नहीं हो सकता। वह सारी सृष्टि को अपना कुटुंब नहीं बना सकता, क्योंकि उसके पास अपना माना हुआ एक कुटुंब मौजूद है या तैयार हो रहा है। उसकी जितनी वृद्धि, उतना ही सर्वव्यापी प्रेम में विक्षेप होता है। इसके उदाहरण हम सारे संसार में देख रहे हैं।

इसलिए अहिंसा-व्रत का पालन करने वाले से विवाह नहीं बन सकता; विवाह के बाहर के विकार की तो बात ही क्या ?

फिर जो विवाह कर चुके हैं उनकी क्या गति होगी ? उन्हें सत्य की प्राप्ति कभी न होगी। वे कभी सर्वार्पण नहीं कर सकते ? हमने तो इसका रास्ता निकाल ही रखा है—विवाहित का अविवाहित की भांति हो जाना। इस दिशा में इससे बढ़कर मैंने दूसरी बात नहीं देखी। इस स्थिति का मजा जिसने चखा है वह गवाही दे सकता है। आज तो इस प्रयोग की सफलता सिद्ध हुई कही जा सकती है। विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को भाई-बहन मानने लग जायं तो सारे झगड़ों से वे मुक्त हो जाते हैं। संसार-भर की सारी स्त्रियां बहनें हैं, माताएं हैं, लड़कियां हैं—यह विचार ही मनुष्य को एकदम ऊंचे ले जानेवाला, बंधन में से मुक्ति देने वाला हो जाता है। इसमें पति-पत्नी कुछ खोते नहीं, वरन् अपनी पूँजी में वृद्धि करते हैं, कुटुंब बढ़ाते हैं; विकार-रूपी मैल निकालने से प्रेम भी बढ़ता है। विकारों के जाने से एक-दूसरे की सेवा अधिक अच्छी हो सकती है, एक-दूसरे के बीच कलह के अवसर कम होते हैं। जहां स्वार्थी एकांगी प्रेम है, वहां कलह के लिए ज्यादा गुंजाइश रहती है।

इस प्रधान विचार के समझ लेने और उसके हृदय में बैठ जाने के बाद ब्रह्मचर्य से होनेवाले शारीरिक लाभ, वीर्य-लाभ आदि बहुत गौण हो जाते हैं। जान-बूझकर भोग-विलास के लिए वीर्य खोना और शरीर को निचोड़ना कितनी बड़ी मूर्खता है ? वीर्य का उपयोग दोनों की शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिए है। उसका विषय-भोग में उपयोग करना यह उसका अति दुरुपयोग है। इस दुरुपयोग के कारण वह बहुतेरे रोगों की जड़ बन जाता है।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और कर्म तीनों से होना चाहिए। व्रत-मात्र के विषय में यही बात समझनी चाहिए। हम गीता में पढ़ते हैं कि जो शरीर को तो वश में रखता हुआ जान पड़ता है; पर मन से विकार का पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। सबका यह अनुभव है कि मन को विकारी रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश

करने में हानि ही है। जहां मन होता है वहां शरीर अंत में घिसटाये बिना नहीं रहता। यहां एक भेद समझ लेना जरूरी है। मन को विकारवश होने देना एक बात है, मन का अपने-आप, अनिच्छा से, बलात्कार से, विकार को प्राप्त हो जाना या होते रहना दूसरी बात है। इस विकार में यदि हम सहायक न बनें तो अंत में जीत ही है। हमारा प्रतिपल का यह अनुभव है कि शरीर काबू में रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिए शरीर को तो तुरंत ही वश में करके मन को वश में करने का हम सतत प्रयत्न करते रहें तो हमने अपना कर्तव्य पालन कर लिया। हमारे, मनके अधीन होते ही, शरीर और मन में विरोध खड़ा हो जाता है, मिथ्याचार का आरंभ हो जाता है। पर जहांतक मनोविकार को दबाते ही रहते हैं वहांतक दोनों साथ जानेवाले हैं, ऐसा कह सकते हैं।

इस ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन, करीब-करीब असंभव माना गया है। इसके कारण की खोज करने से मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य को संकुचित अर्थ में लिया गया है। जननेंद्रिय-विकार के निरोध-भर को ही ब्रह्मचर्य का पालन मान लिया गया है। मेरे खयाल में यह व्याख्या अधूरी और गलत है। विषय-मात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। निस्संदेह, जो अन्य इंद्रियों को जहां-तहां भटकने देकर एक ही इंद्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है। कान से विकारी बातें सुनना, आंख से विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु का स्वाद लेना, हाथ से विकारों को उभारने वाली चीज को छूना, और फिर भी जननेंद्रिय को रोकने का इरादा रखना तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने के प्रयत्न के समान है। इसलिए जननेंद्रिय को रोकने का निश्चय करनेवाले के लिए इंद्रिय-मात्र का, उनके विकारों से रोकने का निश्चय होना ही चाहिए। यह मुझे हमेशा लगता रहा है कि ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से नुकसान हुआ है। मेरा तो यह निश्चित मत और अनुभव है कि यदि हम सब इंद्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास डालें तो जननेंद्रिय को वश में रखने का प्रयत्न तुरंत सफल हो सकता है। इसमें मुख्य स्वादेंद्रिय है, और इसीलिए व्रतों में उसके संयम को हमने पृथक् स्थान दिया है। उसपर अगली बार विचार करेंगे।

ब्रह्मचर्य के मूल अर्थ को सब याद रखें। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की, सत्य की, शोध में चर्या, अर्थात् तत्संबंधी आचार। इस मूल अर्थ में से सर्वेंद्रिय-संयम-रूपी विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेंद्रिय-संयम-रूपी अधूरे अर्थ को तो हमें भूल जाना चाहिए।

: २ :

संतति-निग्रह—१

मेरे एक साथी ने, जो मेरे लेखों को बड़े ध्यान के साथ पढ़ते रहते हैं, जब यह पढ़ा कि संतति-निग्रह के लिए संभवत: मैं उन दिनों सहवास की बात स्वीकार कर लूंगा जिनमें कि गर्भ रहने की संभावना नहीं होती, तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई। मैंने उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह करने की बात मुझे जितनी खलती है उतनी यह नहीं खलती, फिर यह है भी अधिकतर विवाहित दंपतियों के ही लिए। आखिर बहस बढ़ते-बढ़ते इतनी गहराई में चलती गई जिसकी हम दोनों में से किसीने आशा न की थी। मैंने देखा कि यह बात भी उन मित्र को कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह करने-जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे मालूम पड़ा कि यह मित्र स्मृतियों के इस बंधन को साधारण मनुष्यों के लिए व्यवहार-योग्य समझते हैं कि पति-पत्नी को भी तभी सहवास करना चाहिए, जबकि उन्हें सचमुच संतानोत्पत्ति की इच्छा हो। इस नियम को जानता तो मैं पहले से था; लेकिन उसे इस रूप में पहले कभी नहीं माना था, जिस रूप में कि इस बातचीत के बाद मानने लगा हूँ। अभी तक तो, पिछले कितने ही सालों से, मैं इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूँ, जिसपर ज्यों-का-त्यों अमल नहीं हो सकता। इसलिए मैं समझता था कि संतानोत्पत्ति की खास इच्छा के बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष जब तक एक-दूसरे की रजामंदी से सहवास करें तबतक वे वैवाहिक उद्देश्य की पूर्ति करते हुए स्मृतियों के आदेश का भंग नहीं करते, लेकिन जिस नए रूप में अब मैं स्मृति की बात को लेता हूँ वह मेरेलिए मानो एक इलहाम है। स्मृतियों का जो यह कहना है कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेश का दृढ़ता

के साथ पालन करें वे वैसे ही ब्रह्मचारी हैं जैसे अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करने वाले होते हैं, उसे अब मैं इतनी अच्छी तरह समझ गया हूँ जैसे पहले कभी नहीं जानता था।

इस नए रूप में, अपनी काम-वासना को तृप्त करना नहीं; बल्कि संतानोत्पत्ति ही सहवास का एक-मात्र उद्देश्य है। साधारण काम-पूर्ति तो, विवाह की इस दृष्टि से, भोग ही माना जायगा। जिस आनंद को अभी तक हम निर्दोष और वैध मानते आये हैं उसके लिए ऐसे शब्द का प्रयोग कठोर तो मालूम होगा; लेकिन प्रचलित प्रथा की बात मैं नहीं कर रहा हूँ; बल्कि उस विवाह-विज्ञान को ले रहा हूँ जिसे हिंदू-ऋषियों ने बताया है। यह हो सकता है कि उन्होंने ठीक ढंग से न रखा हो या वह बिल्कुल गलत ही हो; लेकिन मुझ-जैसे आदमी के लिए तो, जो स्मृतियों की कई बातों को अनुभव के आधार-भूत मानता है, उनके अर्थ को पूरी तरह स्वीकार किये बगैर कोई चारा ही नहीं है। कुछ पुरानी बातों को उनके पूरे अर्थों में ग्रहण करके प्रयोग में लाने के अलावा और कोई ऐसा तरीका मैं नहीं जानता जिससे उनकी सचाई का पता लगाया जा सके। फिर वह जांच कितनी ही कड़ी क्यों न प्रतीत हो और उससे निकलने वाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यों न लगें।

ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है उसको देखते हुए, कृत्रिम साधनों या ऐसे दूसरे उपायों से संतति-निग्रह करना बड़ी भारी गलती है। अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह समझते हुए मैं यह लिख रहा हूँ। श्रीमती मार्गरेट सेंगर और उनके अनुयायियों के लिए मेरे मन में बड़े आदर का भाव है। अपने उद्देश्य के लिए उनके अंदर जो अदम्य उत्साह है उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। यह भी मैं जानता हूँ कि स्त्रियों को अनचाहे बच्चों की सार-सम्हाल और परवरिश करने के कारण जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसके लिए उनके मन में स्त्रियों के प्रति बड़ी सहानुभूति है। साथ ही यह भी मैं जानता हूँ कि कृत्रिम संतति-निग्रह का अनेक उदार धर्माचार्यों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और डॉक्टरों ने भी समर्थन किया है, जिनमें बहुतों को तो मैं व्यक्तिगत रूप से जानता और मानता भी हूँ; लेकिन इस संबंध में मेरी जो मान्यता है उसे अगर मैं पाठकों या कृत्रिम संतति-निग्रह

के महान् समर्थकों से छिपाऊं तो मैं अपने ईश्वर के प्रति, जो कि सत्य के अलावा और कुछ नहीं है, सच्चा साबित नहीं होऊंगा, और अगर मैंने अपनी मान्यता को छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलती को, अगर मेरी यह मान्यता गलत हो, मैं कभी नहीं जान सकूंगा। अलावा इसके, उन अनेक स्त्री-पुरुषों की खातिर भी मैं यह जाहिर कर रहा हूँ, जोकि संतति-निग्रह-सहित अनेक नैतिक समस्याओं के बारे में मेरे आदेश और मत को स्वीकार करते हैं।

संतति-निग्रह होना चाहिए, इस बात पर तो वे भी सहमत हैं जो इसके लिए कृत्रिम साधनों का समर्थन करते हैं, और वे भी जो अन्य उपाय बतलाते हैं। आत्म-संयम से संतति-निग्रह करने में जो कठिनाई होती है, उससे इंकार नहीं किया जा सकता; लेकिन अगर मनुष्य-जाति को अपनी किस्मत जगानी है तो इसके सिवा इसकी पूर्ति का कोई और उपाय ही नहीं है; क्योंकि यह मेरा आंतरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह की बात सबने मंजूर कर ली तो मनुष्य-जाति का बड़ा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम संतति-निग्रह के समर्थक इसके विरुद्ध प्रायः जो दलीलें पेश करते हैं उनके बावजूद मैं यह कहता हूँ।

मेरा विश्वास है कि मुझमें अंध-विश्वास कोई नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि कोई बात इसीलिए सत्य है, क्योंकि वह प्राचीन है। न मैं यह मानता हूँ कि चूंकि वह प्राचीन है इसलिए उसे संदिग्ध समझा जाय। जीवन की आधारभूत कई ऐसी बातें हैं जिन्हें हम यह समझकर योंही नहीं छोड़ सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।

इसमें शक नहीं कि आत्म-संयम के द्वारा संतति-निग्रह है कठिन; लेकिन अभी तक ऐसा कोई नजर नहीं आया जिसने संजीदगी के साथ इसकी उपयोगिता में संदेह किया हो या यह न माना हो कि कृत्रिम साधनों की बनिस्बत यह ऊंचे दर्जे का है।

मैं समझता हूँ, जब हम सहवास को दृढ़ता से मर्यादित रखने के शास्त्रों के आदेश को पूर्णतः स्वीकार कर लें, और उसको ही सबसे बड़े आनंद का साधन न मानें, तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेंद्रियों का काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दंपति के द्वारा यथा

संभव सर्वोत्तम संतानोत्पत्ति करें। और यह तभी हो सकता है, और होना चाहिए, जबकि स्त्री-पुरुष दोनों सहवास की नहीं बल्कि संतानोत्पत्ति की इच्छा से, जो कि ऐसे सहवास का परिणाम होता है, प्रेरित हों। अतएव संतानोत्पत्ति की इच्छा के बगैर सहवास करना अवैध समझा जाना चाहिए और उसपर नियंत्रण लगाना चाहिए।

साधारण आदमियों पर ऐसा नियंत्रण किया जा सकता है या नहीं; इस पर आगे विचार किया जायगा।

हरिजन-सेवक,
१४ मार्च, १९३६

: ३ :

संतति-निग्रह—२

हमारे समाज की आज ऐसी दशा है कि आत्म-संयम की कोई प्रेरणा ही उससे नहीं मिलती। शुरू से हमारा पालन-पोषण ही उससे विपरीत दिशा में होता है। माता-पिता की मुख्य चिंता तो यही होती है कि, जैसे भी हो, अपनी संतान का ब्याह कर दें जिससे चूहों की तरह वे बच्चे जनते रहें और अगर कहीं लड़की पैदा हो जाय तब तो जितनी भी कम उम्र में हो सके, बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उसका ब्याह कर दिया जाता है। विवाह की रस्म भी क्या है, मानो दावत और फिजूल-खर्ची की एक लंबी सरदर्दी ही है। परिवार का जीवन भी वैसा ही होता है जैसाकि पहले से होता आया है, यानी भोग की ओर बढ़ना ही होता है। छुट्टियां और त्यौहार भी इस तरह रखे गये हैं, जिनसे वैषयिक रहन-सहन की ओर ही अधिक-से-अधिक प्रवृत्ति होती हैं। जो साहित्य एक तरह से गले चपेटा जाता है उससे भी आमतौर पर विषयोन्मुख मनुष्यों को उसी ओर अग्र-सर होने का प्रोत्साहन मिलता है और अत्यंत आधुनिक साहित्य तो प्रायः यही शिक्षा देता है कि विषय-भोग ही कर्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।

ऐसी हालत में कोई आश्चर्य नहीं कि काम-पिपासा का नियंत्रण बिल्कुल असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होगया है और अगर हम यह मानते हैं कि संतति-निग्रह का अत्यंत वांछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सर्वथा निर्दोष साधन आत्म-संयम ही है तो सामाजिक आदर्श और वातावरण को ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्य की सिद्धि का एक-मात्र उपाय यही है कि जो व्यक्ति आत्म-संयम के साधन में विश्वास रखते हैं वे दूसरों को भी उससे प्रभावित करने के लिए अपने अटूट विश्वास के साथ खुद ही इसका अमल

शुरू कर दें। ऐसे लोगों के लिए, मैं समझता हूँ, विवाह की जिस धारणा की मैंने पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्व रखती है। उसे भली-भांति ग्रहण करने का मतलब है अपनी मनः स्थिति को बिल्कुल बदल लेना अर्थात् पूर्ण मानसिक क्रांति। यह नहीं कि सिर्फ कुछ चुने हुए व्यक्ति ही ऐसा करें; बल्कि यही समस्त मानव-जातियों के लिए नियम हो जाना चाहिए; क्योंकि इसके भंग से मानव-प्राणियों का दर्जा घटता है और अनचाहे बच्चों की वृद्धि, सदा बढ़ती रहनेवाली बीमारियों की शृंखला और मनुष्य के नैतिक पतन के रूप में उन्हें तुरंत ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमें शक नहीं कि कृत्रिम साधनों द्वारा संतति-निग्रह से नव-जात शिशुओं की संख्या-वृद्धि पर किसी हद तक अंकुश रहता है, और साधारण स्थिति के मनुष्यों का थोड़ा बचाव हो जाता है; लेकिन व्यक्ति और समाज की जो नैतिक हानि इससे होती है उसका पार नहीं; क्योंकि जो लोग भोग के लिए ही अपनी काम-वासना की तृप्ति करते हैं; उनके लिए जीवन का दृष्टिकोण ही बिल्कुल बदल जाता है। उनके लिए विवाह धार्मिक संबंध नहीं रहता, जिसका मतलब है उन सामाजिक आदर्शों का बिल्कुल बदल जाना, जिन्हें अभी तक हम बहुमूल्य निधि के रूप में मानते रहे हैं। निस्संदेह जो लोग विवाह के पुराने आदर्शों को अंध-विश्वास मानते हैं, उन पर इस दलील का ज्यादा असर न होगा। इसलिए मेरी यह दलील सिर्फ उन्हीं लोगों के लिए है जो विवाह को एक पवित्र संबंध मानते हैं और स्त्री को पाशविक आनंद (भोग) का साधन नहीं; बल्कि संतान के धारण और संरक्षण का गुण रखनेवाली माता के रूप में मानते हैं।

मैंने और मेरे साथी कार्यकर्त्ताओं ने आत्म-संयम की दिशा में जो प्रयत्न किया है, उसके अनुभव से इस विचार की पुष्टि होती है, जिसे कि मैंने यहां उपस्थित किया है। विवाह की प्राचीन धारणा के प्रखर प्रकाश में होने वाली खोज से इसे बहुत ज्यादा बल प्राप्त हो गया है। मेरेलिए तो अब विवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य बिल्कुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर स्वयं विवाह की ही तरह एक मामूली बात होगई है। संतति-निग्रह का और कोई उपाय व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम पड़ता है। एक बार जहां स्त्री और पुरुष में इस विचार ने घर किया नहीं कि जननेंद्रियों का एक-मात्र

और महान् कार्य संतानोत्पत्ति ही है, संतानोत्पत्ति के अलावा और किसी उद्देश्य से सहवास करने को वे अपने रज-वीर्य की दण्डनीय क्षति मानने लगेंगे और उसके फलस्वरूप स्त्री-पुरुष में होनेवाली उत्तेजना को अपनी मूल्यवान शक्ति की वैसी ही दण्डनीय क्षति समझेंगे। हमारे लिए यह समझना बहुत मुश्किल बात नहीं है कि प्राचीन काल के वैज्ञानिकों ने वीर्य-रक्षा को क्यों इतना महत्व दिया है और क्यों इस बात पर उन्होंने इतना जोर दिया है कि हम समाज के कल्याण के लिए उसे शक्ति के सर्वोत्कृष्ट रूप में परिणत करें। उन्होंने तो स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा की है कि जो (स्त्री और पुरुष) अपनी काम-वासना पर पूर्ण नियंत्रण कर ले वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपाय से प्राप्त नहीं की जा सकती।

ऐसे महान् ब्रह्मचारियों की अधिक संख्या क्या, एक भी कोई हमें अपने बीच में दिखाई नहीं पड़ता, इससे पाठकों को घबराना नहीं चाहिए। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमें दिखाई देते हैं वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने हैं। उनके लिए तो बहुत-से-बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु हैं, जिन्होंने अपने शरीर का संयम कर लिया है; पर मन पर अभी संयम नहीं कर पाये हैं। ऐसे दृढ़ वे अभी नहीं हुए हैं कि उनपर प्रलोभन का कोई असर ही न हो; लेकिन यह इसलिए नहीं है कि ब्रह्मचर्य की प्राप्ति बहुत दुरूह है; बल्कि सामाजिक वातावरण ही उसके विपरीत है और जो लोग ईमानदारी के साथ यह प्रयत्न कर रहे हैं उनमें से अधिकांश अनजाने सिर्फ इसी संयम का यत्न करते हैं, जबकि इसमें सफल होने के लिए उनसब विषयों के संयम का यत्न किया जाना चाहिए, जिनके चंगुल में मनुष्य फंस सकता है। इस तरह किया जाय तो साधारण स्त्री-पुरुषों के लिए भी वैसे ही प्रयत्न की आवश्यकता है जैसाकि किसी भी विज्ञान में निष्णात होने के अभिलाषी किसी विद्यार्थी को करना पड़ता है। यहां जिस रूप में ब्रह्मचर्य लिया गया है, उस रूप में जीवन-विज्ञान में निष्णात होना ही वस्तुतः उसका अर्थ भी है।

हरिजन-सेवक,
२१ मार्च, १९३६

: ४ :

ब्रह्मचर्य का अर्थ

एक सज्जन लिखते हैं :

"आपके विचारों को पढ़कर मैं बहुत समय से यह मानता आया हूँ कि संतति-निरोध के लिए ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है। संभोग केवल संतानेच्छा से प्रेरित होकर होना चाहिए; बिना संतानेच्छा का भोग पाप है, इन बातों को सोचते हैं तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। संभोग संतान के लिए किया जाय यह ठीक है; पर एक-दो बार के भोग से संतान न हो, तो? ऐसे समय को मर्यादापूर्वक किस सीमा के अंदर रहना चाहिए? एक-दो बार के संभोग से संतान चाहे न हो, पर आशा कहां पिण्ड छोड़ती है? इस प्रकार वीर्य का बहुत-कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को क्या यह कहा जाय कि ईश्वर की इच्छा विरुद्ध होने के कारण उसे भोग का त्याग कर देना चाहिए। ऐसे भोग के लिए तो बहुत आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। प्राय: ऐसा भी देखने में आया है कि संतान सारी उम्र न होकर उत्तरावस्था में हुई है, इसलिए आशा का त्याग करना कठिन है! यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री-पुरुष रोग से मुक्त हों।"

यह कठिनाई अवश्य है; लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाई के कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़ने के लिए जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाई बढ़ती ही जाती है, यहांतक कि हिमालय के सबसे ऊंचे शिखर पर आज तक कोई पहुंच नहीं सका है। इस प्रयत्न में कई मनुष्यों ने मृत्यु की भेंट की है। हर साल चढ़ाई करने वाले नए-नए पुरुषार्थी तैयार होते हैं और निष्फल भी होते हैं, फिर भी इस प्रयास को वे छोड़ते नहीं। विषयेंद्रिय का दमन हिमालय पहाड़ पर

चढ़ने से तो कठिन है ही; लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊंचा है। हिमालय पर चढ़नेवाला कुछ कीर्ति पायगा, क्षणिक सुख पायगा, इंद्रिय-जीत मनुष्य आत्मानंद पायगा और उसका आनंद दिन-प्रति-दिन बढ़ता जायगा। ब्रह्मचर्य-शास्त्र में तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष-वीर्य कभी निष्फल होता ही नहीं और होना ही नहीं चाहिए। और जैसा पुरुष के लिए, ऐसा ही स्त्री के लिए भी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब मनुष्य अथवा स्त्री निर्विकार होते हैं, तब वीर्यहानि असंभावित हो जाती है और भोगेच्छा का सर्वथा नाश हो जाता है। जब पति-पत्नी संतान की इच्छा करते हैं, तभी एक-दूसरे का मिलन होता है। यही अर्थ गृहस्थाश्रमी के ब्रह्मचर्य का है अर्थात्—स्त्री-पुरुष का मिलन सिर्फ संतानोत्पत्ति के लिए ही उचित है, भोग-तृप्ति के लिए कभी नहीं। यह हुई कानूनी बात अथवा आदर्श की बात। यदि हम इस आदर्श को स्वीकार करें तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छा की तृप्ति अनुचित है और हमें उसका यथोचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियम का पालन नहीं करते। आदर्श की बात करते हुए हम शक्ति का खयाल नहीं कर सकते; लेकिन आजकल भोग-तृप्ति को आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो नहीं सकता, यह स्वयंसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादित नहीं होना चाहिए। अमर्यादित भोग से नाश होता है, यह सभी स्वीकार करते हैं। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीनकाल से रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्य के नियमों को हम जानते नहीं हैं, इसलिए बड़ी आपत्ति पैदा हुई है; और ब्रह्मचर्य-पालन में अनावश्यक कठिनाई महसूस करते हैं। अब जो आपत्ति मुझे पत्र-लेखक ने बतलाई है, वह आपत्ति ही नहीं रहती है; क्योंकि संतति के ही कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है; अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री-पुरुषों का मिलन होना ही नहीं चाहिए। इस नियम को जानने के बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जबतक स्त्री ने गर्भ धारण नहीं किया तबतक, प्रत्येक ऋतुकाल के बाद, प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुष मिलन क्षंतव्य हो सकता है, और यह मिलन भोग-तृप्ति के लिए न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य

वचन से और कार्य से विकार-रहित होता है, उसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधि का किसी प्रकार डर नहीं है। इतना ही नहीं; बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियों से भी मुक्त होते हैं और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस वीर्य से मनुष्य-जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न संग्रह से अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह बात शास्त्रों में तो कही गई है; लेकिन हरेक मनुष्य इसे अपने लिए यत्न से सिद्ध कर सकता है और जो नियम पुरुषों के लिए है वह स्त्रियों के लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मन से विकारमय रहते हुए शरीर से विकार-रहित होने की व्यर्थ आशा करता है और अंत में मन और शरीर को क्षीण करता हुआ गीता की भाषा में मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

हरिजन-सेवक,
१३ मार्च, १९३७

: ५ :

संभोग की मर्यादा

बंगलौर से एक सज्जन लिखते हैं :

"आप कहते हैं कि विवाहित दंपति को तभी संभोग करना चाहिए जब दोनों बच्चा पैदा करना चाहें; पर मेहरबानी करके यह तो बतलाइए कि बच्चा पैदा करने की इच्छा किसीको क्यों हो ? बहुत-से लोग मां-बाप बनने की जिम्मेदारी को पूरी तरह महसूस किये बगैर ही संतानोत्पत्ति की इच्छा करते हैं और दूसरे, बहुत-से अच्छी तरह यह जानते हुए भी कि वे मां-बाप होने की जिम्मेदारियों को निबाहने में असमर्थ हैं, बच्चों की हविस रखते हैं। बहुत-से ऐसे लोग भी बच्चे पैदा करना चाहते हैं जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से संतानोत्पत्ति के अयोग्य हैं। क्या आप यह नहीं सोचते कि इन लोगों के लिए प्रजनन करना गलती है ?

"बच्चा पैदा करने की इच्छा का उद्देश्य क्या है, यह मैं जानना चाहता हूँ। बहुत-से लोग इसलिए बच्चों की इच्छा करते हैं कि वे उनकी संपत्ति के वारिस बनें और उनके जीवन की नीरसता को मिटाकर सरस बनायें। कुछ लोग इसलिए भी पुत्र की इच्छा करते हैं कि ऐसा न हुआ तो मरने पर वे स्वर्ग में न जा सकेंगे। क्या इन सबका बच्चे की इच्छा करना गलती नहीं है ?"

किसी बात के कारणों की खोज करना तो ठीक है; लेकिन हमेशा ही उन्हें पा लेना संभव नहीं है। संतान की इच्छा विश्व-व्यापी है; लेकिन अपने वंशजों के द्वारा अपनेको कायम रखने की इच्छा अगर काफी और संतोषजनक कारण नहीं है तो इसका कोई दूसरा संतोषजनक कारण मैं नहीं जानता। मगर संतानोत्पत्ति की इच्छा का जो कारण मैंने बतलाया है

वह अगर काफी संतोषजनक न मालूम हो तो भी जिस बात का मैं प्रतिपादन कर रहा हूँ, उसमें कोई दोष नहीं आता; क्योंकि यह इच्छा तो है ही। मुझे तो यह स्वाभाविक ही मालूम पड़ती है। मैं पैदा हुआ, इसका मुझे कोई अफसोस नहीं है। मेरेलिए यह कोई ग़ैर-क़ानूनी बात नहीं है कि मुझमें जो भी सर्वोत्तम गुण हों उन्हें मैं दूसरे में मूर्त्तरूप में उतरे हुए देखूं। कुछ भी हो, जबतक खुद प्रजनन में ही मुझे कोई बुराई न मालूम दे और जबतक मैं यह न देख लूं कि खाली आनंद के लिए संभोग करना भी ठीक ही है, तबतक मुझे इस बातपर कायम रहना चाहिए कि संभोग तभी ठीक है जबकि वह संतानोत्पत्ति की इच्छा से किया जाय। मैं समझता हूँ कि स्मृतिकार इस बारे में स्पष्ट थे कि मनु ने पहले पैदा हुए बच्चों को ही धर्म्य (धर्म से पैदा हुए) बतलाया है और बाद में पैदा हुए बच्चों को काम्य (काम-वासना से पैदा हुए) बतलाया है। इस विषय में यथासंभव अनासक्त भाव से मैं जितना अधिक सोचता हूँ उतना ही अधिक मुझे इस बात का पक्का विश्वास हो जाता है कि इस बारे में मेरी जो स्थिति है और जिसपर मैं क़ायम हूँ वही सही है। मुझे यह स्पष्टतर होता जा रहा है कि इस विषय के साथ जुड़ी हुई अनावश्यक गोपनीयता के कारण इस विषय में हमारा अज्ञान ही सारी कठिनाई की जड़ है। हमारे विचार स्पष्ट नहीं हैं। परिणामों का सामना करने से हम डरते हैं। अधूरे उपायों को हम संपूर्ण या अंतिम मानकर अपनाते हैं और इस प्रकार उन्हें आचरण के लिए बहुत कठिन बना लेते हैं। मगर हमारे विचार स्पष्ट हों, हम क्या चाहते हैं इस बात का हमें निश्चय हो, तो हमारी वाणी और हमारे आचरण दृढ़ होंगे।

इस प्रकार, अगर मुझे इस बात का निश्चय हो कि भोजन का हरेक ग्रास शरीर को बनाने और कायम रखने के ही लिए है तो स्वाद की खातिर मैं कभी खाना न चाहूँगा। यही नहीं; बल्कि मैं यह भी महसूस करूंगा कि अगर भूख या शरीर को क़ायम रखने की दृष्टि के अलावा कोई चीज सुस्वाद होने के ही कारण खाना चाहूँ तो वह रोग की निशानी होगी; इसलिए मुझे उसको वाजिब और स्वास्थ्यप्रद इच्छा समझकर उसकी पूर्ति करने के बजाय अपनी इस बीमारी को दूर करने की ही फ़िक्र

करनी पड़ेगी। इसी तरह अगर मुझे इस बात का निश्चय हो कि प्रजनन की निर्विवाद इच्छा के बग़ैर संभोग करना ग़ैर-क़ानूनी और शरीर, मन तथा आत्मा के लिए विनाशक है, तो इस इच्छा का दमन करना निश्चय ही आसान हो जायगा—उससे कहीं आसान, जबकि मेरे मन में यह निश्चय न हो कि खाली इच्छा की पूर्ति करना क़ानून-सम्मत और हितकर है या नहीं। अगर मुझे ऐसी इच्छा के ग़ैर-क़ानूनी-पन या अनौचित्य का स्पष्ट रूप से भान हो तो मैं उसे एक तरह की बीमारी समझूंगा और अपनी पूरी शक्ति के साथ उसके आक्रमणों का मुक़ाबला करूंगा। ऐसे मुकाबले के लिए तब मैं अपनेको अधिक शक्तिशाली महसूस करूंगा। जो लोग यह दावा करते हैं कि हमें यह बात पसंद तो नहीं है; लेकिन हम असहाय हैं, वे ग़लती पर ही नहीं हैं; बल्कि झूठे भी हैं और इसलिए प्रतिरोध में वे कमजोर रहते और हार जाते हैं। अगर ऐसे सब लोग आत्म-निरीक्षण करें तो उन्हें मालूम होगा कि उनके विचार उन्हें धोखा देते हैं। उनके विचारों में वासना की इच्छा होती है, और उनकी वाणी उनके विचारों को ग़लत रूप में व्यक्त करती है। दूसरी ओर यदि उनकी वाणी उनके विचारों की सच्ची द्योतक हो तो कमज़ोरी-जैसी कोई बात नहीं हो सकती। हार तो हो सकती है; पर कमज़ोरी हरगिज़ नहीं।

इन सज्जन ने अस्वस्थ माता-पिताओं द्वारा किये जानेवाले प्रजनन पर जो आपत्ति की है वही बिल्कुल ठीक है। उन्हें प्रजनन की कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए। अगर वे यह कहें कि संभोग हम प्रजनन के लिए ही करते हैं तो वे अपनेको और संसार को धोखा देते हैं। किसी भी विषय पर विचार करने में सचाई का हमेशा सहारा लेना पड़ता है। संभोग के आनंद को छिपाने के लिए प्रजनन की इच्छा का बहाना हर्गिज़ न लेना चाहिए।

हरिजन-सेवक,

२४ जुलाई, १९३७

: ६ :

कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह

एक सज्जन लिखते हैं :

"हाल में 'हरिजन' में श्रीमती सेंगर और महात्मा गांधी की मुलाकात का जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

"इस बातचीत में जिस ख़ास बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया मालूम पड़ता है वह यह है कि मनुष्य अंततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम-से-कम आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही वह संतोष नहीं करता; बल्कि सुंदरता, रंग-बिरंगापन और आकर्षण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहब ने कहा है कि 'अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे रोटी ख़रीद ले; लेकिन अगर दो हों तो एक से रोटी ख़रीद और एक से फूल।' इसमें एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावतः कलाकार है, इसलिए हम उसे ऐसे कामों के लिए भी प्रयत्नशील पाते हैं, जो महज़ उसके शरीर-धारण के लिए आवश्यक नहीं है। उसने तो अपनी आवश्यकता को कला का रूप दे रखा है और उन कलाओं की ख़ातिर मनों ख़ून बहाया है। मनुष्य की उत्पादक बुद्धि नई-नई कठिनाइयों और समस्याओं को पैदा करके उनका तेल निकालने के लिए उसे प्रेरित करती रहती है। रूसो, रस्किन, टॉलस्टाय, थोरो और गांधी उसे जैसा 'सरल-सादा' बनाना चाहते हैं वैसा बन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिए एक आवश्यक चीज़ है; और उसे भी उसने एक महान् कला के रूप में परिणत कर दिया है।

"उसके मस्तिष्क को अपील करने के लिए प्रकृति का उदाहरण व्यर्थ है, क्योंकि वह तो उसके जीवन से ही बिल्कुल मेल नहीं खाती है।

'प्रकृति उसकी शिक्षिका नहीं बन सकती ।' जो लोग प्रकृति के नाम पर अपील करते हैं वे यह भूल करते हैं कि प्रकृति में केवल पर्वत तथा उपत्यकाएं और कुसुम-क्यारियां ही नहीं हैं, बल्कि बाढ़, झंझावात और भूकंप भी हैं । कट्टर निराकारवादी नीत्से का कहना है कि कलाकार की दृष्टि से प्रकृति कोई आदर्श नहीं है । वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरण से काम लेती है और बहुत-सी चीजों को छोड़ जाती है । प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है । 'प्रकृति से अध्ययन करना' कोई अच्छा चिह्न नहीं है; क्योंकि इन नगण्य चीज़ों के लिए धूल में लोटना अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है । भिन्न प्रकार की बुद्धि के कार्य को, कला-विरोधी मामूली बातों को, देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि हम क्या हैं ? हम यह जानते हैं कि जंगली जानवर अपने शरीर को बनाये रखने की आवश्यकतावश कच्चा मांस खाते हैं, स्वादवश नहीं । यह भी जानते हैं कि प्रकृति में तो पशुओं के समागम की ऋतुएं होती हैं । ऋतुओं के अतिरिक्त कभी मैथुन होता ही नहीं; लेकिन उसी फिलासफर के अनुसार यह तो अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है । जो मनुष्य स्वभावतः अच्छा कलाकार है इसलिए जब संतानोत्पत्ति की आवश्यकता न रहे तब मैथुन-कार्य को बंद कर देना या केवल संतानोत्पत्ति की स्पष्ट इच्छा से प्रेरित होकर ही मैथुन करना, इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली, इतनी हिसाब-किताब की-सी बात है कि हमारे फिलासफर के कथनानुसार वह उसकी कला-प्रेमी प्रकृति को अपील नहीं कर सकता । इसलिए वह तो स्त्री-पुरुष के प्रेम को एक बिल्कुल दूसरे पहलू से देखता है—ऐसे पहलू से जिसका संतान-वृद्धि से कोई संबंध नहीं । यह बात हेवलॉक एलिस और मेरी स्टोप्स-जैसे आप्त पुरुषों के कथनों से स्पष्ट होती है । यह इच्छा यद्यपि आत्मा से उत्पन्न होती है, पर वह शारीरिक संभोग के बिना अपूर्ण रह जाती है । यह उस समय तक रहेगा जबतक हम इस अंश को केवल आत्मा में पूरा नहीं कर सकते और उसके लिए शरीर-यंत्र की आवश्यकता समझते हैं । ऐसे ही सहवास के परिणाम का सामना करना बिल्कुल दूसरी समस्या है । यहीं संतान-निग्रह के आंदोलन का काम आ जाता है; पर यह काम अगर स्वयं आत्मा की ही पुनः व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय और बाह्य

अनुशासन द्वारा—आत्म-संयम के माने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं—तो हमें यह आशा नहीं होती कि उससे जिन उद्देश्यों की पूर्ति होनी चाहिए उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न इससे बिना सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार के संतति-निग्रह ही हो सकता है ?

"अपनी बात को समाप्त करने से पहले मैं यह और कहूँगा कि आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य का महत्व मैं किसी प्रकार कम नहीं करना चाहता। वैषयिक नियंत्रण को पूर्णता पर ले जानेवाली कला के रूप में मैं हमेशा उसकी सराहना करूंगा; लेकिन जैसे अन्य कलाओं की संपूर्णता हमारे जीवन में, (और नीत्से के अनुसार) हमारे सारे जीवन में, कोई हस्तक्षेप नहीं करती वैसे ही ब्रह्मचर्य के आदर्श को मैं दूसरी बातों पर प्रभुत्व पाने का सहारा नहीं बनने दूंगा—जनसंख्या-वृद्धि-जैसी समस्याओं के हल करने का साधन तो वह और भी कम है। हमने इसका कैसे हौवा बना डाला है। युद्धकालीन बच्चों के बारे में हम जानते हैं। जिन सैनिकों ने अपना खून बहाकर अपने देशवासियों के लिए समरांगण में विजय प्राप्त की, क्या हम इसीलिए उन्हें इसका श्रेय न देंगे कि उन्होंने रणक्षेत्र में भी बच्चे पैदा कर डाले ? नहीं, कोई ऐसा नहीं करेगा। मैं समझता हूँ कि इन बातों को मद्दे-नज़र रखकर ही शास्त्रों (प्रश्नोपनिषद्) में यह कहा गया है कि 'ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यते' अर्थात् केवल रात्रि में ही..(याने दिन के असाधारण समय को छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहां साधारण वैषयिक जीवन को भी ब्रह्मचर्य के ही समान बताया गया है, उसमें इतनी कठोरता तो जीवन के विविध रूपों में उलट-फेर करने के फलस्वरूप ही आई है।"

जो भी कोई ऐसी चीज़ हो, जिसमें कोरा शब्दाडंबर, गालीगलौज या आरोप-आक्षेप न हो उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूंगा, जिससे पाठकों के सामने समस्या के दोनों पहलू आजायं, और वे अपने-आप किसी निर्णय पर पहुंच सकें। इसलिए इस पत्र को मैं बड़ी खुशी के साथ प्रकाशित करता हूँ। खुद मैं भी यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि जिस बात को विज्ञान-सिद्ध और हितकारी होने का दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते हैं, उसका उज्ज्वल पक्ष देखने की कोशिश करने पर भी मुझे वह क्यों इतनी खलती है ?

लेकिन मेरे संतोष की कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं होती, जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाहित जीवन में मैथुन स्वयं कोई अच्छाई है और उसे करनेवालों को उससे कोई लाभ होता है। हां, अपने खुद के तथा दूसरे अनेक अपने मित्रों के अनुभव के आधार पर इससे विपरीत बात मैं जरूर कह सकता हूँ। हममें से किसीने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक उन्नति की हो, यह मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्तेजन और संतोष तो उससे अवश्य मिला; लेकिन उसके बाद ही थकावट भी जरूर हुई और जैसे ही उस थकावट का असर मिटा नहीं कि मैथुन की इच्छा तुरंत ही फिर जागृत होगई। हालांकि मैं सदा से जागरूक रहा हूँ, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकार से मेरे कामों में बड़ी बाधा पड़ी है। इस कमज़ोरी को समझकर ही मैंने आत्म-संयम का रास्ता पकड़ा और इसमें संदेह नहीं कि तुलनात्मक रूप से काफी लंबे-लंबे समय तक मैं जो बीमारी से बचा रहता हूँ और शारीरिक एवं मानसिक रूप से जो इतना अधिक और विचित्र प्रकार का काम कर सकता हूँ कि जिसे देखनेवालों ने अद्भुत बतलाया है, उसका कारण मेरा यह आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य-पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जन ने जो कुछ पढ़ा उसका उन्होंने ग़लत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें तो कोई शक नहीं; सुंदरता और रंग-बिरंगापन भी उसे चाहिए ही; लेकिन मनुष्य की कलात्मक और उत्पादक प्रवृत्ति ने अपने सर्वोत्तम रूप में उसे यही सिखाया है कि वह आत्म-संयम में कला का और अनुत्पादक (जो संतानोत्पत्ति के लिए न हो) ऐसे सहवास में अ-सुंदरता का दर्शन करे। उसमें कलात्मकता की जो भावना है, उसने उसे विवेकपूर्वक यह जानने की शिक्षा दी है कि विविध रंगों का चाहे-जैसा मिश्रण सौंदर्य का चिह्न नहीं है, और न हर तरह का आनंद ही अपने-आप में कोई अच्छाई है। कला की ओर उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगिता में ही आनंद की खोज करे, याने वही आनंदोपभोग करे, जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकास के प्रारंभिक काल में ही उसने यह जान लिया था कि खाने के लिए ही उसे खाना नहीं खाना चाहिए, जैसाकि

हममें से कुछ लोग अभी भी करते हैं; बल्कि जीवन टिका रहे इसलिए खाना चाहिए। बाद में उसने यह भी जाना कि जीवित रहने के लिए ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिए, बल्कि अपने सहजीवियों और उनके द्वारा उस प्रभु की सेवा के लिए उसे जीना चाहिए, जिसने उसे तथा उन सबको बनाया या पैदा किया है। इसी प्रकार जब उसने विषय-सहवास या मैथुनजनित आनंद की बात पर विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इंद्रिय की भांति जननेंद्रिय का भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य याने सदुपयोग इसीमें है कि केवल प्रजनन या संतानोत्पत्ति के ही लिए सहवास किया जाय। इसके सिवा और किसी प्रयोजन से किया जानेवाला सहवास अ-सुंदर है और ऐसा करनेवाले व्यक्ति और उसकी नस्ल के लिए उसके बहुत भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मैं समझता हूँ, अब इस दलील को और आगे बढ़ाने की कोई ज़रूरत नहीं।

उक्त सज्जन का यह कहना ठीक है कि मनुष्य आवश्यकता से प्रेरित होकर कला की रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कार की जननी है; बल्कि कला की भी जननी है। इसलिए जिस कला का आधार आवश्यकता नहीं है उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

साथ ही, अपनी हरेक इच्छा को हमें आवश्यकता का नाम नहीं देना चाहिए। मनुष्य की स्थिति तो एक प्रकार से प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनों प्रकार की शक्तियां अपने खेल खेलती हैं। किसी भी समय वह प्रलोभन का शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभन से लड़ते हुए, उनका शिकार न बनने के रूप में उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए। जो अपने माने हुए बाहरी दुश्मनों से तो लड़ता है; किंतु अपने अंदर के विविध शत्रुओं के आगे अंगुली भी नहीं उठा सकता या उन्हें अपना मित्र समझने की ग़लती करता है, वह योद्धा नहीं है। "उसे युद्ध तो करना ही चाहिए"—लेकिन उक्त सज्जन का यह कहना गलत है "कि उसे भी उसने (मनुष्य ने) एक महान् कला के ही रूप में परिणत कर दिया है।" क्योंकि युद्ध की कला तो हमने अभी शायद ही सीखी हो। हमने तो झूठे युद्ध को उसी तरह सच्चा मान लिया है, जैसे हमारे पूर्व पुरुषों ने बलिदान का ग़लत अर्थ लगाकर बजाय अपनी दुर्वासनाओं के, बेचारे निर्दोष पशुओं का बलिदान

शुरू कर दिया । अबीसीनिया की सीमा में आज जो-कुछ हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौंदर्य है और न कोई कला । उक्त सज्जन ने उदाहरण के लिए जो नाम चुने हैं, वे भी (अपने) दुर्भाग्य से ठीक नहीं चुने; क्योंकि रूसो, रस्किन, थोरो और टॉलस्टाय तो अपने समय में प्रथम श्रेणी के कलाकार थे और उनके नाम हममें से अनेकों के मरकर भुला दिये जाने के बाद भी वैसे ही अमर रहेंगे ।

'प्रकृति' शब्द का उक्त सज्जन ने जो उपयोग किया है, वह भी ठीक नहीं किया मालूम पड़ता है । प्रकृति का अनुसरण या अध्ययन करने के लिए जब मनुष्यों को प्रेरित किया जाता है तो उनसे यह नहीं कहा जाता कि वे जंगली कीड़े-मकोड़ों या शेर की तरह काम करने लगें; बल्कि यह अभिप्राय होता है कि मनुष्य की प्रकृति का उसके सर्वोत्तम रूप में अध्ययन किया जाय । मेरे ख़याल से वह सर्वोत्तम रूप मनुष्य की नई सृष्टि पैदा करने की प्रकृति है, या जो-कुछ भी वह हो, उसीके अध्ययन के लिए कहा जाता है, लेकिन शायद इस बात को जानने के लिए काफी प्रयत्न की आवश्यकता है । पुराने लोगों के उदाहरण देना आजकल ठीक नहीं है । उक्त सज्जन से मेरा कहना है कि नीत्से या प्रश्नोपनिषद् को बीच में घुसेड़ना व्यर्थ है । मेरेलिए तो इस बारे में अब उद्धरणों की कोई ज़रूरत नहीं रही है । देखना यह है कि जिस बारे में हम चर्चा कर रहे हैं, उसमें तर्क क्या कहता है ? प्रश्न यह है कि हम जो यह कहते हैं कि जननेंद्रिय का सदुपयोग केवल इसीमें है कि प्रजनन या संतानोत्पत्ति के लिए ही उसका उपयोग किया जाय और उसका अन्य कोई उपयोग दुरुपयोग ही है, यह बात ठीक है या नहीं ? अगर यह ठीक है, तो फिर दुरुपयोग को रोककर सदुपयोग पर जाने में कितनी ही कठिनाई क्यों न हो, उससे वैज्ञानिक शोधक को घबराना नहीं चाहिए ।

हरिजन-सेवक,
४ अप्रैल, १९३६

: ७ :

सुधारक बहनों से

एक बहन से गंभीरतापूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम संतान-निरोध-संबंधी मेरी स्थिति को अभी तक लोगों ने काफी अच्छी तरह नहीं समझा। कृत्रिम संतति-निरोध के साधनों का मैं जो विरोध करता हूँ वह इस कारण नहीं कि वे हमारे यहां पश्चिम से आये हैं। कुछ पश्चिमी चीजें तो हमारे लिए वैसी ही उपयोगी हैं जैसी कि वे पश्चिम के लिए हैं और कृतज्ञता के साथ मैं उनका प्रयोग करता हूँ। अतएव कृत्रिम संतति-निरोध के साधनों से मेरा विरोध तो केवल उनके गुण-दोष की दृष्टि से ही है।

मैं यह मानता हूँ कि कृत्रिम संतति-निग्रह के साधनों का प्रतिपादन करनेवालों में जो सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं वे उन्हें उन स्त्रियों तक ही मर्यादित रखना चाहते हैं जो संतानोत्पत्ति से बचते हुए अपनी और अपने पतियों की विषय-वासना को तृप्त करना चाहती हैं; लेकिन मेरे ख़याल में मानव-प्राणियों में यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसको तृप्त करना मानव-कुटुंब की आध्यात्मिक गति के लिए घातक है। इसके खिलाफ़ अन्य बातों के साथ अक्सर पेन के लार्ड डासन की यह राय पेश की जाती है:

"विषय-संबंधी प्रेम संसार की एक प्रचंड और प्रधान शक्ति है। हमारे अंदर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और बलवती होती है कि हमें इसके प्रभाव को तथ्य-रूप में स्वीकार करना ही होगा, आप इसका दमन नहीं कर सकते। आप चाहें तो इसे अच्छे रूप में परिणत कर सकते हैं; किंतु इसके प्रवाह को रोक नहीं सकते। और यदि इसके प्रवाह का स्रोत अपर्याप्त या ज़रूरत से ज्यादा प्रतिबंध-युक्त हुआ तो यह अनियमित स्रोतों से निकल

पड़ेगा। आत्म-संयम में हानि की संभावना रहती है। और यदि किसी जाति में विवाह होने में कठिनाई होती हो या बहुत देर में जाकर विवाह होते हों तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित संबंधों की वृद्धि हो जायगी। इस बात को तो सभी मानते हैं कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिए जब मन और आत्मा भी उसके अनुकूल हों और इस बात पर भी सब सहमत हैं कि संतानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है; लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बारंबार हम जो संभोग करते हैं वह हमारे प्रेम का शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमें संतानोत्पत्ति का कोई विचार या इरादा नहीं होता। तो क्या हम सब ग़लत ही करते आ रहे हैं ? या, यह बात है कि धर्म का हमारे वास्तविक जीवन से आवश्यक संपर्क नहीं है, जिसके कारण उसके और सर्वसाधारण के बीच खाई पड़ गई है ? जबतक किसी सत्ता या शासक का, और धर्माधिकारियों को भी मैं इन्हींमें शुमार करता हूँ, रुख नौजवानों के प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहसपूर्ण और वास्तविकता के अधिक अनुकूल न होगा तबतक उनकी वफ़ादारी कभी प्राप्त नहीं होगी।

"फिर संतानोत्पत्ति के अलावा भी विषय-प्रेम का अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवन में स्वस्थ और सुखी रहने के लिए यह अनिवार्य है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वर की देन है तो उसके उपयोग का ज्ञान भी प्राप्त करने के लायक है। अपने क्षेत्र में यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल एक की; बल्कि संभोग करनेवाले स्त्री-पुरुष दोनों की शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक-दूसरे को जो शारीरिक आनंद प्राप्त होगा उससे उन दोनों म एक स्थायी बंधन स्थापित होगा, उससे उनका विवाह-संबंध स्थिर होगा। अत्यधिक विषय-प्रेम से उतने विवाह असफल नहीं होते जितने कि अपर्याप्त और बेढंगे वैषयिक प्रेम से होते हैं। काम-वासना अच्छी चीज है; ऐसे अधिकांश व्यक्ति, जो किसी भी रूप में अच्छे हैं, काम-भावना रखने में समर्थ हैं। काम-भावना-विहीन विषय-प्रेम तो बिल्कुल बेजान चीज़ है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपन के समान एक शारीरिक अति है। अब चूंकि 'प्रार्थना-पुस्तक' के परिवर्द्धन पर विचार हो रहा है, मैं यह बड़े आदर के साथ सुझाना चाहता हूँ कि उसके विवाह-विधान में

यह और जोड़ दिया जाय कि 'स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम की संपूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाह का उद्देश्य है।'

"अब मैं यह सब छोड़कर संतति-निग्रह के सबसे ज़रूरी प्रश्न पर आता हूँ। संतति-निग्रह स्थायी होने के लिए आया है। वह तो अब जम चुका है... और अच्छा हो या बुरा, उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इंकार करने से उसका अंत नहीं होगा। जिन कारणों से प्रेरित होकर अभिभावक लोग संतति-निग्रह करना चाहते हैं, उनमें कभी-कभी तो स्वार्थ होता है; लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित ही होते हैं। विवाह करके अपनी संतान को जीवन-संघर्ष के योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन-निर्वाह का खर्च, विविध करों का बोझ—ये सब इसके लिए ज़ोरदार कारण हैं। और फिर शिक्षितवर्ग के अंदर स्त्रियां अपने पतियों के काम-धंधों तथा सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की भी इच्छा करती हैं। यदि वे बार-बार गर्भवती होती रहें तो वे इच्छाएं पूरी नहीं हो सकतीं। यदि संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का सहारा न लिया जाय तो देर में विवाह करने का तरीका अख्तियार करना पड़ेगा; लेकिन ऐसा होने पर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूप से अपनी विषयेच्छा तृप्त करने के विविध दुष्परिणाम सामने आयंगे। एक ओर तो हम ऐसे अनुचित संबंधों की बुराई करें और दूसरी ओर विवाह के मार्ग में बाधाएं उपस्थित करें तो उससे कोई लाभ न होगा। बहुत-से लोग कहते हैं 'संभव है कि संतति-निग्रह करना ठीक हो सकता है, वह तो स्वेच्छापूर्ण संयम ही है; लेकिन ऐसा संयम या तो व्यर्थ होगा या यदि उसका कोई असर पड़ा तो वह अव्यावहारिक और स्वास्थ्य व सुख के लिए हानिकर होगा।' परिवार के लिए, मान लो, हम चार बच्चों की मर्यादा बना लें, तो यह विवाहित स्त्री-पुरुष के लिए एक तरह का संयम ही होगा, जो देर-देर में संतानोत्पत्ति होने के कारण ब्रह्मचर्य के समान ही माना जायगा। और जब हम इस बात पर ध्यान दें कि आर्थिक कठिनाई के कारण विवाहित जीवन के प्रारंभिक वर्षों में बहुत कठोर संयम करना पड़ेगा, जबकि विषयेच्छा बहुत प्रबल रहती है, तो मैं कहता हूँ कि वह इच्छा इतनी तीव्र होगी कि अधिकांश व्यक्तियों के लिए उसका दमन करना असंभव होगा और यदि उसे ज़बर्दस्ती दबाने का यत्न

किया तो स्वास्थ्य और सुख पर उसका बहुत बड़ा असर पड़ेगा और नैतिकता के लिए भी वह बहुत ख़तरनाक होगा। यह तो बिल्कुल अस्वाभाविक बात है। यह तो बात हुई कि प्यासे आदमी के पास पानी रखकर उससे कहा जाय कि ख़बरदार, इसे पीना मत। नहीं, संयम द्वारा संतति-निग्रह से कोई लाभ न होगा और यदि इसका असर हुआ भी तो वह विनाशक होगा।

"यह तो अस्वाभाविक और मूलतः अनैतिक बात कही जाती है। सभ्यता का तो काम ही यह है कि प्राकृतिक शक्तियों को वश में करके उन्हें इस तरह परिणत कर लिया जाय कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर सके। बच्चा आसानी से पैदा करने के लिए जब पहले-पहल औजारों (Anaesthetics) का प्रयोग शुरू हुआ तो यही शोर मचाया गया था कि ऐसा करना अस्वाभाविक और अधार्मिक काम है; क्योंकि प्रसवपीड़ा सहने के लिए ही तो भगवान् ने स्त्रियों को बनाया है। यही बात कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह करने की है, उसमें भी इससे अधिक कोई अस्वाभाविकता नहीं है। उनका प्रयोग तो अच्छा ही है, अलबत्ता दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अंत में क्या मैं यह प्रार्थना करूं कि धर्माधिकारी लोग इस प्रश्न का विचार करते समय इन पुरातन परंपराओं की परवाह नहीं करेंगे जो व्यर्थ-सी हो गई हैं; बल्कि ऐसे ही अन्य कुछ प्रश्नों की तरह, नए संसार की आवश्यकताओं और आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे ?"

यह कितने बड़े डॉक्टर हैं इससे इंकार नहीं किया जा सकता; लेकिन डॉक्टर के रूप में उनका जो बड़प्पन है, उसके लिए काफी आदर का भाव रखते हुए भी मैं इस बात पर संदेह करने का साहस करता हूँ कि उनका यह कथन कहांतक ठीक है, खासकर उस हालत में जबकि यह उन स्त्री-पुरुषों के अनुभव के विपरीत है, जिन्होंने आत्म-संयम का जीवन बिताया है; किंतु उससे उनकी कोई नैतिक या शारीरिक हानि नहीं हुई। वस्तुतः बात यह है कि डॉक्टर लोग आमतौर पर उन्हीं लोगों के संपर्क में आते हैं जो स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करके कोई-न-कोई बीमारी मोल ले लेते हैं। इसलिए बीमारी के अच्छा होने के लिए क्या करना चाहिए, यह तो वे अक्सर सफलता के साथ बता देते हैं; लेकिन यह बात वे हमेशा नहीं

जानते कि स्वस्थ स्त्री-पुरुष किसी खास दिशा में क्या कर सकते हैं ? अतएव विवाहित स्त्री-पुरुषों पर संयम के जो असर पड़ने की बात लार्ड डासन कहते हैं उसे अत्यंत सावधानी के साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी विषय-तृप्ति को स्वतः कोई बुराई नहीं मानते, उनकी प्रवृत्ति उसे वैध मानने के ही है. लेकिन आधुनिक युग में तो कोई बात स्वयंसिद्ध नहीं मानी जाती और हरेक चीज़ की बारीकी से छान-बीन की जाती है। अतः यह मानना सरासर ग़लती होगी कि चूंकि अबतक हम विवाहित जीवन में विषय-भोग करते रहे हैं, इसलिए ऐसा करना ठीक ही है या स्वास्थ्य के लिए उसकी आवश्यकता है। बहुत-सी पुरानी प्रथाओं को हम छोड़ चुके हैं और उसके परिणाम अच्छे ही हुए हैं। तब इस खास प्रथा को ही उन स्त्री-पुरुषों के अनुभव की कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक-दूसरे की सहमति से संयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनों तरह का लाभ उठा रहे हैं ?

लेकिन मैं तो, इसके अलावा, विशेष आधार पर भी भारत में संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का विरोधी हूँ। भारत में नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय-दमन क्या है ? इसमें उनका कोई दोष नहीं है। छोटी उम्र में ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहां की प्रथा है, और विवाहित जीवन में संयम रखने की उनसे कोई नहीं कहता। माता-पिता तो अपने नाती-पोते देखने को उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल-पत्नियों से उसके आस-पासवाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायं। ऐसे वातावरण में संतति-निरोधक कृत्रिम साधनों से तो कठिनाइयां और बढ़ेंगी ही। जिन बेचारी लड़कियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियों की इच्छा-पूर्ति करेंगी, उन्हें अब यह और सिखाया जायगा कि बच्चे पैदा तो न करें, पर विषय-भोग किये जायं, इसीमें उनका भला है। और इस दुहरे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें संतति-निरोध के कृत्रिम साधनों का सहारा लेना होगा !!!

मैं तो विवाहित बहनों के लिए इस विद्या को बहुत घातक समझता हूँ। मैं यह नहीं मानता कि पुरुष की तरह स्त्री की काम-वासना भी अदम्य होती

है । मेरी समझ में, पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए आत्म-संयम करना ज्यादा आसान है । हमारे देश में ज़रूरत बस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'न' कह सकें, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियों को मिलनी चाहिए । स्त्रियों को हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियों के हाथ की कठपुतली या औज़ार-मात्र बन जायं, यह उनके कर्त्तव्य का अंग नहीं है । और कर्त्तव्य की ही तरह उनके अधिकार भी हैं । जो लोग सीता को राम की आज्ञानुवर्त्तिनी दासी के रूप में ही देखते हैं वे इस बात को महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनता की भावना कितनी थी और राम हरेक बात में उनका कितना ख़याल रखते थे । भारत की स्त्रियों में संतति-निरोध के कृत्रिम साधन अख्तियार करने के लिए कहना तो बिल्कुल उल्टी बात है । सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासता से मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीर की पवित्रता की शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवता की सेवा में कितना गौरव है, इस बात की शिक्षा देनी चाहिए । यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारत की स्त्रियों का तो उद्धार ही नहीं हो सकता, और इसलिए संतानोत्पत्ति में रुकावट डालकर अपने रहे-सहे स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उन्हें सिर्फ संतति-निग्रह के कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिए ।

जो बहनें सचमुच उन स्त्रियों के दुःख से दुखी हैं, जिन्हें इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चों के झमेले में पड़ना है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए । वे जो-कुछ चाहती हैं, वह एकदम तो कृत्रिम संतति-निरोध के साधनों के पक्ष में आंदोलन से भी नहीं होनेवाला है । हरेक उपाय के लिए सवाल तो शिक्षा का ही है । इसलिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढंग की ।

हरिजन सेवक,
२ मई, १९३६

: ८ :

फिर वही संयम का विषय

एक सज्जन लिखते हैं :

"इन दिनों आपने ब्रह्मचर्य पर जो लेख लिखे हैं, उनसे लोगों में खलबली-सी मच गई है। जिनकी आपके विचारों के साथ सहानुभूति है उन्हें भी लम्बे अर्से तक संयम रख सकना मुश्किल पड़ रहा है। उनकी यह दलील है कि आप अपना ही अनुभव और अभ्यास सारी मानव-जाति पर लागू कर रहे हैं, परंतु आपने खुद भी तो कबूल किया है कि आप पूरे ब्रह्मचारी की शर्तें पूरी नहीं कर सकते; क्योंकि आप स्वयं विकार से खाली नहीं हैं और चूंकि आप यह भी मानते हैं कि दंपति को संतान की संख्या सीमित रखने की ज़रूरत है, इसलिए अधिकांश मनुष्यों के लिए तो एक यही व्यावहारिक उपाय है कि वे संतति-निरोध के कृत्रिम साधन काम में लावें।"

मैं अपनी मर्यादाएं स्वीकार कर चुका हूँ। इस विवाद में तो ये ही मेरे गुण हैं। कारण, मेरी मर्यादाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि मैं भी अधिकांश मनुष्यों की भांति दुनयवी आदमी हूं और असाधारण गुणवान् होने का मेरा दावा भी नहीं है। मेरे संयम का हेतु भी बिल्कुल मामूली था। मैं तो देश या मनुष्य-समाज की सेवा के खयाल से संतान-वृद्धि रोकना चाहता था। देश या समाज की सेवा की बात दूर की है। इसकी अपेक्षा बड़े कुटुंब का पालन न कर सकना संतति-नियमन के लिए अधिक प्रबल कारण होना चाहिए। वर्तमान दृष्टिकोण से इस पैंतीस वर्ष के समय में मुझे सफलता मिली है। फिर भी मेरा विकार नष्ट नहीं हुआ है और उसके विषय में मुझे आज भी जागरूक रहने की ज़रूरत है। इससे भलीभांति सिद्ध है कि मैं बहुत-कुछ साधारण मनुष्य हूँ। इसलिए मेरा कहना है कि जो बात मेरे

लिए संभव हुई है वही दूसरे किसी भी प्रयत्नशील मनुष्य के लिए संभव हो सकती है।

कृत्रिम उपायों के समर्थकों के साथ मेरा झगड़ा इस बात पर है कि वे यह मान बैठे हैं कि मामूली मनुष्य संयम रख ही नहीं सकता। कुछ लोग तो यहांतक कहते हैं कि यदि वह समर्थ हो तो भी उसे संयम नहीं रखना चाहिए। ये लोग अपने क्षेत्र में कितने भी बड़े आदमी हों, मैं अत्यंत विनम्रता किंतु विश्वास के साथ कहूंगा कि उन्हें इस बात का अनुभव नहीं है कि संयम से क्या-क्या हो सकता है! उन्हें मानवीय आत्मा के मर्यादित करने का कोई हक नहीं है। ऐसे मामलों में मेरे-जैसे एक आदमी की निश्चित गवाहा भी, यदि वह विश्वस्त हो, तो न केवल अधिक मूल्यवान है; बल्कि निर्णायक भी है। सिर्फ इसी वजह से कि मुझे लोग 'महात्मा' समझते हैं, मेरी गवाही को निकम्मी करार दे देना गंभीर खोज की दृष्टि से उचित नहीं है।

परंतु एक बहन की दलील और भी जोरदार है। उनके कहने का मतलब यह है—"हम कृत्रिम उपायों के समर्थक लोग तो हाल ही में सामने आये हैं। मैदान आप संयम के समर्थकों के हाथ में पीढ़ियों से, शायद हज़ारों वर्षों से, रहा है, तो आप लोगों ने क्या कर दिखाया? क्या दुनिया ने संयम-का सबक सीख लिया है? बच्चों के भार से लदे हुए परिवार की दुर्दशा रोकने के लिए आप लोगों ने क्या किया है? आहत माताओं की पुकार को आप लोगों ने सुना है? आइए, अब भी मैदान आप लोगों के लिए खाली है। आप संयम का समर्थन करते रहिए, हमें इसकी चिंता नहीं है, और अगर आप पतियों की जबर्दस्ती से स्त्रियों को बचा सकें तो हम आपकी सफलता भी चाहेंगे, मगर आप हमारे तरीके की निंदा क्यों करते हैं? हम तो मनुष्य की साधारण कमज़ोरियों और आदतों के लिए गुंजाइश रखकर चलते हैं और हम जो उपाय करते हैं अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाय, तो वे क़रीब-क़रीब अचूक साबित होते हैं।"

इस व्यंग में स्त्री-हृदय की पीड़ा भरी हुई है। जो कुटुंब बच्चों की बढ़ती हुई संख्या के मारे सदा दरिद्र रहते हैं, उनके लिए इस बहन का हृदय दया से भर गया है। यह सभी जानते हैं कि मानवीय दुःख की पुकार

पत्थर के दिलों को भी पिघला देती है। भला यह पुकार उच्चात्मा बहनों को प्रभावित किये बिना कैसे रह सकती है ? पर अगर हम भावावेश में बह जायं और डूबते की तरह किसी भी तिनके का सहारा ढूंढने लगें तो ऐसी पुकार हमें आसानी से गुमराह भी कर सकती है।

हम ऐसे जमाने में रह रहे हैं, जिसमें विचार और उनके महत्व बहुत जल्दी-जल्दी बदल रहे हैं। धीरे-धीरे होनेवाले परिणामों से हमको संतोष नहीं होता। हमें अपने इन सजातीय, बल्कि केवल अपने ही देश की भलाई से तसल्ली नहीं होती। हमें सारे मानव-समाज का ख़याल होता है, मानवता की उद्देश्य-सिद्धि में यह कम सफलता नहीं है।

परंतु मानवीय दुःखों का इलाज धीरज छोड़ने से नहीं होगा और न सब पुरानी बातों को सिर्फ पुरानी होने की वजह से छोड़ देने से होगा। हमने पूर्व जन्म में भी वे ही स्वप्न देखे थे जो आज हमें उत्साह से अनुप्राणित कर रहे हैं। शायद उन स्वप्नों में इतनी स्पष्टता न रही हो। यह भी संभव है कि एक ही प्रकार के दुःखों का जो उपाय उन्होंने बताया वह हमारे मानस के आशातीत रूप में विशाल हो जाने पर लागू हो। और मेरा दावा तो निश्चित अनुभव के आधार पर यह है कि जिस तरह सत्य और अहिंसा मुट्ठी-भर लोगों के लिए ही नहीं है; बल्कि सारे मनुष्य-समाज के लिए रोजमर्रा के काम की चीजें हैं, ठीक उसी तरह संयम थोड़े-से महात्माओं के लिए नहीं; बल्कि सब मनुष्यों के लिए है। और जिस तरह बहुत-से आदमियों के झूठे और हिंसक होने पर भी मनुष्य-समाज को अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए, उसी प्रकार बहुत-से या अधिकांश लोग भी संयम का संदेश स्वीकार न कर सकें तो इस विषय में हमें अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए।

बुद्धिमान् न्यायाधीश वह है जो विकट मामला सामने होने पर भी ग़लत फ़ैसला नहीं करता। लोगों की नज़र में वह अपनेको कठोर हृदय बन जाने देगा; क्योंकि वह जानता है कि कानून को बिगाड़ देने में सच्ची दया नहीं है। हमें नाशवान शरीर या इंद्रियों की दुर्बलता को भीतर विराजमान अविनाशी आत्मा की दुर्बलता नहीं समझ लेना चाहिए। हमें तो आत्मा के नियमानुसार शरीर को साधना चाहिए। मेरी विनम्र सम्मति में ये

नियम थोड़े-से और अटल हैं और इन्हें सभी मनुष्य समझ और पाल सकते हैं। इन नियमों को पालने में कम-ज्यादा सफलता मिल सकती है, पर ये लागू तो सभीपर होते हैं। अगर हममें श्रद्धा है तो उसे सिर्फ इसीलिए नहीं छोड़ देना चाहिए कि मनुष्य-समाज को अपने ध्येय की प्राप्ति में या उसके निकट पहुंचने में लाखों बरस लगेंगे। 'जवाहरलाल' की भाषा में, हमारी विचार-सारणी ठीक होनी चाहिए।

परंतु उस बहन की चुनौती का जवाब देना तो बाक़ी ही रह गया। संयमवादी हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठे हैं। उनका प्रचार-कार्य जारी है। जैसे कृत्रिम साधनों से उनके साधन भिन्न हैं, वैसे ही उनका प्रचार का तरीका अलग है; और होना चाहिए। संयमवादियों को चिकित्सालयों की ज़रूरत नहीं है, वे अपने उपायों का विज्ञापन भी नहीं कर सकते, क्योंकि यह कोई बेचने या दे देने की चीज़ तो है नहीं। कृत्रिम साधनों की टीका करना और उनके उपयोग से लोगों को सचेत करते रहना इस प्रचार-कार्य का ही अंग है। उनके कार्य का रचनात्मक पक्ष तो सदा रहा ही है; किंतु वह तो स्वभावतः ही अदृश्य होता है। संयम का समर्थन कभी बंद नहीं किया गया है और इसका सबसे कारगर तरीका आचरणीय है। संयम का सफल अभ्यास करनेवाले सच्चे लोग जितने ज्यादा होंगे उतना ही यह प्रचार-कार्य अधिक कारगर होगा।

हरिजन-सेवक,
३० मई, १९३६

: ६ :

संयम द्वारा संतति-निग्रह

निम्नलिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनों पड़ा रहा :

"आजकल सारी दुनिया में संतति-निग्रह का समर्थन हो रहा है। हिंदुस्तान भी उससे बाहर नहीं। आपके संयम-संबंधी लेखों को मैंने पढ़ा है। संयम में मेरा विश्वास है।

"अहमदाबाद में थोड़े दिन पहले एक संतति-निग्रह-समिति स्थापित हुई है। ये लोग दवा, टिकिया, ट्यूब वग़ैरह का समर्थन करके स्त्रियों को हमेशा के लिए संभोगवती करना चाहते हैं।

"मुझे आश्चर्य होता है कि जीवन के आखिरी किनारे पर बैठे हुए लोग किसलिए प्रजा को निचोड़ डालने की हिमायत करते हैं।

"इसके बजाय संतति-नियमन-समिति स्थापित की होती तो ? आप गुजरात पधार रहे हैं, इसलिए मेरी ऊपर की प्रार्थना ध्यान में रखकर गुजरात के नारी-तेज को प्रकाश दीजिएगा।

"आज के डॉक्टर और वैद्य मानते हैं कि रोगियों को संयम का पाठ सिखाने से उनकी कमाई मारी जायगी और उन्हें भूखों मरना पड़ेगा।

"इस प्रकार के संतति-निग्रह से समाज बहुत गहरे और अंधेरे खड्ड में चला जायगा। उसे अगर ऊपर और प्रकाश में रहना है तो संयम को अपनाये बिना छुटकारा नहीं। बग़ैर संयम के मनुष्य कभी ऊंचा नहीं चढ़ सकेगा। इससे तो जितना व्यभिचार आज है, उससे भी अधिक बढ़ेगा। और फिर रोग का तो पूछना ही क्या ?"

इस बीच में मैं अहमदाबाद हो आया हूं। उपर्युक्त विषय पर तो मुझे वहां अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिला नहीं, पर लेखक

के इस कथन को मैं अवश्य मानता हूं कि संतति-निग्रह का नियमन केवल संयम से ही सिद्ध किया जाय। दूसरी रीति से नियमन करने में अनेक दोष उत्पन्न होने की संभावना है। जहां इस नियम ने घर कर लिया है, वहां दोष साफ दिखाई दे रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, जो संयम-रहित नियमन के समर्थक इन दोषों को नहीं देख सकते; क्योंकि संयम-रहित नियमन ने नीति के नाम से प्रवेश किया है।

अहमदाबाद में जो समिति बनाई गई है, उसके हेतु के विषय में यह कहना ज्यादती है कि लेखक ने जैसा लिखा है वह वैसा ही है; पर उसका हेतु चाहे जैसा हो, तो भी उसकी प्रवृत्ति का परिणाम तो अवश्य विषय-भोग बढ़ाने में ही आना है। पानी को उंडेलें तो वह नीचे ही जायगा, इसी तरह विषय-भोग बढ़ानेवाली युक्तियां रची जायंगी तो उनसे वह भोग बढ़ेगा ही।

इसी प्रकार डाक्टर और वैद्य संयम का पाठ सिखायं तो उनकी कमाई मारी जायगी, इससे वे संयम नहीं सिखाते, ऐसा मानना भी ज्यादती है। संयम का पाठ सिखाना डाक्टर-वैद्यों ने अपना क्षेत्र आज तक माना नहीं; मगर डॉक्टर और वैद्य इस तरफ ढलते जा रहे हैं, इस बात के चिन्ह ज़रूर नज़र आते हैं। उनका क्षेत्र व्याधियों के कारण शोधने और रोग मिटाने का है। अगर वे व्याधियों के कारणों में असंयम-स्वच्छंदता को अग्रस्थान न देंगे तो यह कहना चाहिए कि उनका दिवाला निकलने का समय आगया है। ज्यों-ज्यों जन-समाज की समझ-शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसे, अगर रोग जड़-मूल से नष्ट न हुआ तो संतोष होने का नहीं है और जबतक जन-समाज संयम की ओर नहीं ढलेगा, व्याधियों को रोकने के नियमों का पालन नहीं करेगा, तबतक आरोग्य की रक्षा करना अशक्य है। यह इतना स्पष्ट है कि अंत में इसपर सभी कोई ध्यान देंगे, और प्रामाणिक डॉक्टर संयम के मार्ग पर अधिक-से-अधिक ज़ोर देंगे। संयम-रहित निग्रह भोग बढ़ाने में अधिक-से-अधिक हाथ बंटायगा, इस विषय में मुझे तो शंका नहीं। इसलिए अहमदाबाद की समिति अधिक गहरे उतरकर असंयम के भयंकर परिणामों पर विचार करके स्त्रियों को संयम की सरलता और आवश्यकता का ज्ञान कराने में अपने समय का उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है। (ह० से०, १२-६-३६)

: १० :

कैसी नाशकारी चीज़ है ?

डॉ० सोखे और डॉ० मंगलदास के बीच हाल ही में जो उस बारह-मासी विषय अर्थात् संतति-निरोध पर वादविवाद हुआ था, उससे मुझे परमादरणीय डॉ० अन्सारी के मत को प्रकट करने की हिम्मत हो रही है, जो डॉ० मंगलदास के समर्थन में है। करीबन एक साल की बात है। मैंने स्वर्गीय डॉ० साहब को लिखा था कि वैद्यक की दृष्टि से आप इस विवाद-ग्रस्त विषय में मेरे मत का समर्थन कर सकते हैं या नहीं ? मुझे यह जानकर आश्चर्य और खुशी हुई कि उन्होंने मेरा समर्थन किया। पिछली बार जब मैं दिल्ली गया था, तब इस विषय में उनसे मेरी रू-बरू बातचीत हुई थी और मेरे अनुरोध करने पर उन्होंने अपने निजी तथा अपने अन्य व्यवसाय-बन्धुओं के अनुभव के आधार पर सप्रमाण अंकोंसहित यह सिद्ध करने के लिए कि, इन कृत्रिम साधनों का उपयोग करनेवालों को कितनी ज़बर्दस्त हानि पहुँच रही है. एक लेखमाला लिखने का वचन दिया था। उन्होंने तो उन मनुष्यों की दयनीय अवस्था का हू-बहू वर्णन सुनाया था जो यह जानते हुए कि उनकी पत्नियां और अन्य स्त्रियां संतति-निरोध के कृत्रिम साधनों को काम में ला रही हैं, उनसे कुछ दिन संभोग के स्वाभाविक परिणाम के भय से मुक्त होने पर वे अमर्यादित भोग-विलास पर टूट पड़े। नित्य नई-नई औरतों से मिलने की उन्हें अदम्य लालसा होने लगी और आख़िर पागल होगये। आह ! डॉक्टरसाहब अपनी उस लेखमाला को शुरू करने ही वाले थे कि चल बसे।

कहा जाता है कि बर्नार्ड शॉ ने भी यही कहा है कि संतति-निरोधक साधनों का उपयोग करनेवाले स्त्री-पुरुष का संभोग तो प्रकृति-विरुद्ध

वीर्य-नाश से किसी प्रकार कम नहीं है। क्षण-भर सोचने से पता चल जायगा कि उनका कथन कितना यथार्थ है।

इसी बुरी टेव के शिकार बनकर धीरे-धीरे अपने पौरुष से हाथ धो लेनेवाले विद्यार्थियों के करुणाजनक पत्र तो मुझे करीब-करीब रोज़ मिलते हैं। कभी-कभी शिक्षकों के भी खत मिलते हैं। 'हरिजन सेवक' में लाहौर के सनातनधर्म कालेज के आचाय का जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ था, वह भी पाठकों को पता होगा, जिसमें उन्होंने उन शिक्षकों के विरुद्ध बड़ी बुरी तरह शिकायत की थी, जो अपने विद्यार्थियों के साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे। इससे उनके शरीर और चरित्र की जो दुर्गति हुई थी उसका भी जिक्र आचार्यजी ने अपने पत्र में किया था। इन उदाहरणों से तो मैं यही नतीजा निकालता हूं कि अगर पति-पत्नी के बीच में भी मैथुन के स्वाभाविक परिणाम के भय से मुक्त होने की संभावना लेकर संभोग होगा, तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा, जो प्रकृति-विरुद्ध मैथुनसे निश्चित रूप से होता है।

निस्संदेह कृत्रिम साधनों के बहुत-से हिमायती परोपकार की भावना से ही प्रेरित होकर इन चीज़ों का अंधाधुंध प्रचार कर रहे हैं; पर यह परोपकार अस्थायी है। मैं इन भले आदमियों से अनुरोध करता हूं कि इसके परिणामों का तो ख़याल करें। वे ग़रीब लोग कभी पर्याप्त मात्रा में इनका उपयोग नहीं कर सकेंगे, जिनतक यह उपकारी पुरुष पहुंचाना चाहते हैं। और जिन्हें इनका उपयोग नहीं करना चाहिए वे ज़रूर इनका उपयोग करेंगे, और अपने साथियों का नाश करेंगे; पर अगर यह पूरी तरह से सिद्ध हो जाता कि शारीरिक या नैतिक आरोग्य की दृष्टि से यह चीज़ लाभदायक है, तो यह भी सह लिया जाता। इनके और भावी सुधारकों के लिए डॉ० अंसारी की राय—अगर उसके विषय में मेरे शब्दों को कोई प्रामाण्य माने—एक गंभीर चेतावनी है।

हरिजन-सेवक

१२ अक्तूबर, १९३६

: ११ :

अरण्य-रोदन

"अभी हाल ही में संतति-नियमन की प्रचारिका मिसेज़ सेंगर के साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढ़ी है। इसका मुझपर इतना गहरा असर हुआ कि आपके दृष्टि-बिंदु पर संतोष और पसंदगी जाहिर करने के लिए मैं आपको यह पत्र लिखने बैठा हूं। आपकी हिम्मत के लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करे।

"पिछले तीस साल से मैं लड़कों को पढ़ाने का काम करता हूं। मैंने हमेशा उन्हें देह-दमन और निस्वार्थ जीवन बिताने के लिए तालीम दी है। जब मिसेज़ सेंगर हमारे आस-पास प्रचार-कार्य कर रही थीं, तब हाईस्कूल के लड़के-लड़कियां उनकी दी हुई सूचनाओं का उपयोग करने लग गये थे और परिणाम का डर दूर हो जाने से उनमें खूब व्यभिचार चल पड़ा था। अगर मिसेज़ सेंगर की शिक्षा कहीं व्यापक होगई तो सारा समाज विषय-सेवन के पीछे पड़ जायगा, और शुद्ध प्रेम का दुनिया से नामो-निशान तक मिट जायगा। मैं मानता हूं कि जनता को उच्च आदर्शों की शिक्षा देने में सदियां लग जायंगी; पर यह काम शुरू करने के लिए अनुकूल-से-अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज़ सेंगर विषय को ही प्रेम समझ बैठी हैं; पर यह भूल है; क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय-सेवन से इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

"डॉ० ऐलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बात में सहमत हैं कि संयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगों के जो दूसरी तरह अपने विषयों को उत्तेजित करते हों पहले से ही अपने मन पर काबू खो चुके हों। मिसेज़ सेंगर का यह बयान कि अधिकांश डॉक्टर यह मानते

हैं कि ब्रह्मचर्य-पालन से हानि होती है; बिल्कुल ग़लत है। मैं तो देखता हूं कि यहां कई बड़े-बड़े डॉक्टर अमेरिकन सोश्यल हाइजीन (सामाजिक आरोग्य-शास्त्र) के विज्ञान-शास्त्री ब्रह्मचर्य-पालन को लाभदायक मानते हैं।

"आप एक बड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-संग्राम के तमाम चढ़ाव-उतारों का बहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूं। आप जगत् में उन इने-गिने व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष-संबंध के प्रश्न पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि-बिंदु से विचार किया है। मैं आपको यह जताना चाहता हूं कि महासमर के इस पार भी आपके आदर्शों के साथ सहानुभूति रखनेवाला आपका एक साथी यहांपर है।

"इस नेक काम को जारी रखें, ताकि नवयुवक-वर्ग सच्ची बात को जान ले; क्योंकि भविष्य इसी वर्ग के हाथों में है।

"अपने विद्यार्थियों के साथ अपने संवाद में से मैं छोटा-सा उद्धरण यहां देना चाहता हूं—"निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण-प्रवृत्ति-में से तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी; उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा, पर अगर तुम अपनी निर्माण-शक्ति को आज विषय-तृप्ति का साधन बना लोगे, तो तुम अपनी रचना-शक्ति पर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक बल का नाश हो जायगा। रचना-प्रवृत्ति—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—का नाम जीवन है, यही आनंद है। अगर तुम प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना या संतति का निरोध करके विषय-सेवन द्वारा सिर्फ इंद्रिय-सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करोगे तो तुम प्रकृति के नियम का भंग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का हनन करोगे। इसका परिणाम क्या होगा? अनिवार विषयाग्नि धधक उठेगी और आखिर निराशा तथा असफलता में अंत होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणों का विकास नहीं कर पायंगे, जिनके बल पर हम उस नवीन मानव-समाज की रचना कर सकें जिसमें कि दिव्यात्मा स्त्री-पुरुष हों।"

"मैं जानता हूं कि यह सब पूर्वकाल के नबियों के अरण्य-रोदन-जैसी बात है; पर मेरा पक्का विश्वास है कि वही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पड़े, मैं कम-से-कम उंगली दिखाकर तो अपना समाधान कर लूं।"

संतति-नियमन के कृत्रिम साधनों का निषेध करनेवाले जो पत्र मुझे कभी-कभी अमेरिका से मिलते रहते हैं, उन्हींमें से यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिम से हर हफ्ते हिंदुस्तान में जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उसके तो पढ़ने से दिल पर बिल्कुल जुदा ही असर पड़ता है। यही मालूम होता है, मानो अमेरिका में तो सिवा बेवकूफों के कोई भी इन आधुनिक साधनों का विरोध नहीं करते हैं, जो मनुष्य को उस अंध-विश्वास से मुक्ति प्रदान करते हैं, जो अबतक शरीर को गुलाम बनाकर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुख से मनुष्य को वंचित करके उसके शरीर को निष्प्राण बना देने की शिक्षा देता चला आ रहा है। यह साहित्य भी उतना ही क्षणिक नशा पैदा करता है, जितना कि वह कर्म, जिसकी वह शिक्षा देता है और जिसे उसके असाधारण परिणाम के खतरे से बचकर करने को प्रोत्साहन देता है। पश्चिम से आनेवाले केवल उन पत्रों को मैं 'हरिजन' के पाठकों के सामने नहीं पेश करता, जिनमें व्यक्तिगत रूपसे इन साधनों का निषेध होता है। वे तो साधक की दृष्टि से मेरे लिए उपयोगी हैं। साधारण पाठकों के लिए उनका मूल्य कम है, पर यह पत्र ख़ासतौर पर एक महत्व रखता है; यह एक ऐसे शिक्षक का है; जिसे तीस वर्ष का अनुभव है। यह हिंदुस्तान के उन शिक्षकों और जनता (स्त्री-पुरुष) के लिये ख़ासतौर पर मार्गदर्शक है, जो उस ज्वर के प्रबल प्रवाह में बहे जा रहे हैं। संतति-नियामक साधनों के प्रयोग में शराब से अनंत-गुना प्रबल प्रलोभन होता है; पर इस मारक प्रलोभन के कारण वह उस चमकीली शराब की अपेक्षा अधिक जायज़ नहीं है। और चूंकि इन दोनों का प्रचार बढ़ता ही जा रहा है, इस कारण निराश होकर इनका विरोध करना भी नहीं छोड़ा जा सकता। अगर इनके विरोधियों को अपने कार्य की पवित्रता में श्रद्धा है, तो उन्हें उसे बराबर जारी रखना चाहिए। ऐसे अरण्य-रोदनों में भी वह बल होता है कि जो मूढ़ जनसमुदाय के सुर-में-सुर मिलानेवाले की आवाज़ में नहीं हो सकता; क्योंकि जहां अरण्य में रोनेवाले की आवाज़ में चिंतन और मनन के अलावा अटूट श्रद्धा होती है, वहां सर्व-साधारण के इस शोर की जड़ में विषय-भोग की व्यक्तिगत लालसा और अनचाही संतति तथा दुखिया माताओं के प्रति झूठी और निरी भावुक

सहानुभूति के अलावा और कुछ नहीं होता। और इस मामले में व्यक्तिगत अनुभववाली दलील में तो उतनी ही बुद्धि है, जितनी कि एक शराबी के किसी कार्य में होती है और सहानुभूतिवाली दलील एक धोखे की टट्टी है, जिसके अंदर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चों के तथा मातृत्व के कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजाएं और हिदायतें हैं। संयम और इंद्रिय-नियम के कानून की जो परवा नहीं करेगा, वह तो एक तरह से अपनी खुद-कुशी ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इंद्रियों का नियमन नहीं कर सकते, तो हम असफलता को न्यौता देते हैं। कायरों की तरह हम युद्ध से मुंह मोड़कर जीवन के एकमात्र आनंद से अपने-आपको वंचित करते हैं।

हरिजन-सेवक

२७ मार्च, १९३७

: १२ :

आश्चर्यजनक, अगर सच है !

खांसाहब अब्दुलगफ्फारखां और मैं सवेरे और शाम जब घूमने जाते हैं तो हमारी बात-चीत अक्सर ऐसे विषयों पर हुआ करती है, जो सभीके हित के होते हैं। खांसाहब सरहदी इलाक़ों में, यहांतक कि काबुल और उसके भी आगे काफ़ी घूमे हैं, और सरहदी कबीलों के बारे में उनको बड़ी अच्छी जानकारी है। इसलिए वह अक्सर वहां के सीधे-सादे लोगों की आदतों और रस्म-रिवाज़ों के बारे में मुझे बतलाया करते हैं। वह मुझे बताते हैं कि इन लोगों की मुख्य खुराक़, जो इस सभ्यता की हवा से अबतक अछूते ही हैं, मक्का और जौ की रोटी और मसूर है। वक्तन-फवक्तन वे छाछ भी ले लिया करते हैं। वे गोश्त खाते हैं, पर बहुत कम। मैंने समझा कि उनकी मशहूर दिलेरी का एक-मात्र कारण उनका खुली हवा में रहना और वहां का अच्छा शक्तिवर्द्धक जल-वायु ही है। 'नहीं, सिर्फ़ यही बात नहीं है' खांसाहब ने उसी वक्त कहा, 'उनमें जो ताकत व दिलेरी है उसका भेद तो हमें उनके संयमी जीवन में मिलता है। शादी वे, मर्द व औरतें दोनों ही, पूरी जवानी की उम्र में जाकर करते हैं। बेवफाई, व्यभिचार या अविवाहित प्रेम को तो वे जानते ही नहीं। शादी से पहले सहवास करने की सजा वहां मौत है। इस तरह का गुनाह करनेवाले की जान लेने का उन्हें हक़ है।'

अगर यह संयम या इंद्रिय-निग्रह वहां इतना व्यापक है, जैसाकि खांसाहब बतलाते हैं, तो इससे हमें हिंदुस्तान में एक ऐसा सबक़ मिलता है, जो हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए। मैंने खांसाहब के आगे यह विचार रखा कि उन लोगों के कदावर और दिलेर होने का एक बहुत बड़ा सबब

आश्चर्यजनक, अगर सच है !

अगर उनका संयमी जीवन है, तो मन और शरीर के बीच पूरा सहयोग होना ही चाहिए; क्योंकि अगर मन विषय-तृप्ति के पीछे पड़ा रहा और शरीर ने निग्रह किया, तो इससे प्राण-शक्ति का इतना भयंकर नाश होगा कि शरीर में कुछ भी नहीं बच रहेगा। खांसाहब मान गये कि यह अनुमान ठीक है। उन्होंने कहा कि जहांतक मैं इसकी जांच कर सका हूं, मुझे लगता है कि वे लोग संयम के इतने ज्यादा आदी होगये हैं कि नौजवान मर्दों और औरतों का शादी से पहले विषय-तृप्ति करने का कभी मन ही नहीं होता। खांसाहब ने मुझसे यह भी कहा कि उन इलाकों की औरतें कभी पर्दा नहीं करतीं, वहां झूठी लज्जा नहीं है, औरतें निडर हैं, चाहे जहां आज़ादी से घूमती हैं और अपनी संभाल खुद कर सकती हैं, अपनी इज्ज़त-आबरू बचा सकती हैं, किसी मर्द से वे अपनी रक्षा नहीं कराना चाहतीं, उन्हें ज़रूरत भी नहीं। तो भी खांसाहब यह मानते हैं कि उनका यह संयम बुद्धि या जीती-जागती श्रद्धा पर आधार नहीं रखता, इसलिए जब ये पहाड़ों के रहनेवाले लोग सभ्य या नज़ाकत की ज़िंदगी के संपर्क में आते हैं, तो उनका वह संयम टूट जाता है। सभ्यता के संपर्क में आकर जब वे अपनी पुरानी बात छोड़ देते हैं, तो उन्हें इसके लिए कोई सजा नहीं मिलती और उनकी बेवफाई और व्यवहार को पब्लिक कम या ज्यादा उपेक्षा की नज़र से देखती है। इससे ऐसे विचार सामने आ जाते हैं, जिनकी मुझे फिलहाल चर्चा नहीं करनी चाहिए। यह लिखने का तो अभी मेरा यह मतलब है कि खांसाहब की तरह जो लोग इन फिरकों के आदमियों के बारे में जानकारी रखते हों, और उनके कथन का समर्थन करते हों, उनसे इसपर और भी रोशनी डलवाई जाय और मैदान में रहनेवाले नौजवानों और युवतियों को बतलाया जाय कि संयम का पालन, अगर वह इन पहाड़ी फिरकों के लिए सचमुच स्वाभाविक चीज है, जैसाकि खांसाहब का खयाल है, तो हम लोगों के लिए भी उसे उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए—अगर अच्छे-अच्छे विचारों को हम अपने विचार-जगत् में बसा लें, और यों ही घुस आनेवाले बाधक विचारों या विषय-विकारों को जगह न दें। दरअसल, अगर सद्विचार काफी बड़ी संख्या में हमारे मन में बस जायं, तो बाधक विचार वहां ठहर ही नहीं सकते। अवश्य इसमें साहस की ज़रूरत

है। आत्म-संयम कायर आदमी को हासिल नहीं होता। आत्म-संयम तो प्रार्थना और उपवास-रूपी जागरूकता और निरंतर प्रयत्न का सुंदर फल है। अर्थ-हीन स्तोत्रपाठ प्रार्थना नहीं है, न शरीर को भूखों मारना, उपवास है, प्रार्थना तो उसी हृदय से निकलती है जिसे कि ईश्वर का श्रद्धापूर्वक ज्ञान है; और उपवास का अर्थ है बुरे या हानिकारक विचार, कर्म या आहार से परहेज रखना। मन विविध प्रकार के व्यंजनों की ओर दौड़ रहा है और शरीर को भूखों मारा जा रहा है, तो ऐसा उपवास तो निरर्थक व्रत-उपवास से भी बुरा है।

हरिजन-सेवक
१० अप्रैल, १९३७

: १३ :

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले बिहार-सरकार ने अपने शिक्षा-विभाग में पाठशालाओं में होनेवाले अप्राकृतिक व्यभिचार के संबंध में जांच करवाई थी। जांच-समिति ने इस बुराई को शिक्षकों तक में पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासना की तृप्ति के कारण विद्यार्थियों के प्रति अपने पद का दुरुपयोग करते हैं। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने एक सरकुलर द्वारा शिक्षकों में पाई जानेवाली ऐसी बुराई का प्रतिकार करने का हुक्म निकाला था। सरकुलर का जो परिणाम हुआ होगा—अगर कोई हुआ हो—वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास इस संबंध में भिन्न-भिन्न प्रांतों से साहित्य भी आया है, जिसमें इस और ऐसी बुराइयों की तरफ मेरा ध्यान खींचा गया है और कहा गया है कि यह प्रायः भारत-भर के तमाम सार्वजनिक और प्राइवेट मदरसों में फैल गया है और बराबर बढ़ रहा है।

यह बुराई यद्यपि अस्वाभाविक है तथापि इसकी विरासित हम अनंत काल से भोगते आ रहे हैं। तमाम छुपी बुराइयों का इलाज ढूंढ निकालना एक कठिनतम काम है। यह और भी कठिन बन जाता है, जब इसका असर बालकों के संरक्षक पर भी पड़ता है—और शिक्षक बालकों के संरक्षक हैं ही। प्रश्न होता है कि 'अगर प्राण-दाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचें?' मेरी राय में जो बुराइयां प्रगट हो चुकती हैं, उनके संबंध में विभाग की ओर से बाज़ाब्ता कार्रवाई करना ही इस बुराई के प्रतिकार के लिए काफ़ी न होगा। सर्वसाधारण के मत को इस संबंध में सुगठित और सुसंस्कृत बनाना इसका एक-मात्र उपाय है; लेकिन

इस देश के कई मामलों में प्रभावशाली लोकमत जैसी कोई बात है ही नहीं। राजनैतिक जीवन में असहायता या बेबसी की जिस भावना का एकच्छत्र राज्य है उसने देश के जीवन के सब क्षेत्रों पर अपना असर डाल रखा है। अतएव जो बुराइयां हमारी आंखों के सामने होती रहती हैं, उन्हें भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यता पर ही एकांत ज़ोर देती है, वह इस बुराई को रोकने के लिए अनुपयोगी ही नहीं है; बल्कि उससे उलटे बुराई को उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओं में दाखिल होने से पहले निर्दोष थे, शाला के पाठ्य-क्रम के समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द बनते देखे गये हैं। बिहार-समिति ने बालकों के मन पर धार्मिक प्रतिष्ठा के संस्कार जमाने की सिफारिश की है; लेकिन बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे ? अकेले शिक्षक ही धर्म के प्रति आदर-भावना पैदा कर सकते हैं; लेकिन वे स्वयं इससे शून्य हैं। अतएव प्रश्न योग्य शिक्षकों के चुनाव का प्रतीत होता है; मगर योग्य शिक्षकों के चुनाव का अर्थ होता है, या तो अब से कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षण के ध्येय का काया-पलट—याने शिक्षा को पवित्र कर्त्तव्य मानकर शिक्षकों का उसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथालिकों में यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो हमारे-जैसे ग़रीब देश के लिए स्पष्ट ही असंभव है। मेरे विचार में हमारे लिए दूसरा मार्ग ही सुगम है; लेकिन वह भी उसकी शासन-प्रणाली के आधीन रहकर संभव नहीं; जिसमें हरएक चीज़ की कीमत आंकी जाती है, और जो दुनिया-भर में ज्यादा-से-ज्यादा होती है।

अपने बालकों के नैतिक सुधार के प्रति माता-पिताओं की लापरवाही के कारण इस बुराई को रोकना और कठिन हो जाता है। वे तो बच्चों को स्कूल भेजकर अपने कर्त्तव्य की इति-श्री मान लेते हैं। इस तरह हमारे सामने का काम बहुत ही विषाद-पूर्ण है; लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराइयों का एक रामबाण उपाय है और वह है—आत्म-शुद्धि। बुराई की प्रचंडता से घबरा जाने के बदले हममें से हरएक को पूरे-पूरे प्रयत्न-पूर्वक अपने आस-पास के वातावरण का

सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिए और अपने-आपको ऐसे निरीक्षण का प्रथम और मुख्य केंद्र मानना चाहिए। हमें यह कहकर संतोष नहीं कर लेना चाहिए कि हममें दूसरों-की-सी बुराई नहीं है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतंत्र अस्तित्व की चीज़ नहीं है। वह तो एक ही रोग का भयंकर लक्षण है। अगर हममें अपवित्रता भरी है, अगर हम विषय की दृष्टि से पतित हैं तो हमें आत्मसुधार करना चाहिए और फिर पड़ौसियों के सुधार की आशा रखनी चाहिए। आजकल तो हम दूसरों के दोषों के निरीक्षण में बहुत पटु होगये हैं और अपने-आपको अत्यंत निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचार का प्रसार होता है। जो इस बात के सत्य को महसूस करते हैं वे इससे छूटें और उन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नहीं होते तथापि वे बहुत-कुछ संभवनीय है।

हरिजन-सेवक
२७ मई, १९३७

: १४ :

बढ़ता हुआ दुराचार

सनातनधर्म कालेज, लाहौर के प्रिंसिपल लिखते हैं :

"इसके साथ मैं कटिंग और विज्ञप्तियां वगैरह भेज रहा हूं, उन्हें देखने की मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। इन काग़ज़ों से ही आपको सारी बात का पता चल जायगा। यहां पंजाब में 'युवक-हितकारी-संघ' बहुत उपयोगी काम कर रहा है। विद्वत्-समाज एवं अधिकारी-वर्ग का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है, और बालकों के सुसंस्कृत माता-पिताओं की भी दिलचस्पी संघ ने प्राप्त की है। बिहार के पंडित सीतारामदासजी इस आंदोलन के प्रणेता हैं, और इस आंदोलन के आश्रयदाताओं में यहां के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

"इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कोमल वय के बालकों को फंसाने का यह दुराचार भारत के दूसरे भागों की अपेक्षा इधर पंजाब और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत में ज्यादा है।

"क्या आप कृपा कर 'हरिजन' में अथवा किसी दूसरे अख़बार में लेख या पत्र लिखकर इस बुराई की तरफ़ ध्यान आकर्षित करेंगे ?"

इस अत्यंत नाजुक प्रश्न के संबंध में बहुत दिन हुए युवक संघ के मंत्री ने मुझे लिखा था। उनका पत्र आने पर मैंने डॉ गोपीचंद के साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, और उनसे यह मालूम हुआ कि संघ के मंत्री ने जो बातें अपने पत्र में लिखी हैं, वे सब सच्ची हैं; लेकिन मुझे यह स्पष्ट नहीं सूझ रहा था कि इस प्रश्न की 'हरिजन' में या किसी दूसरे पत्र में क्या चर्चा करूं ? इस दुराचार का मुझे पता था; मगर मुझे इस बात का पता नहीं था कि अख़बारों में इसकी चर्चा करने से कोई लाभ हो

सकेगा या नहीं। यह विश्वास अब भी नहीं है। किंतु कालेज के प्रिंसिपल साहब ने जो प्रार्थना की है उसकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता।

यह दुराचार नया नहीं है। यह बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है; चूंकि उसे गुप्त रखा जाता है इसलिए वह आसानी से पकड़ में नहीं आ सकता। जहां विलासपूर्ण जीवन होगा वहीं यह दुराचार होगा। प्रिंसिपल साहब के बताए हुए किस्से से तो यह प्रकट होता है कि अध्यापक ही अपने विद्यार्थियों को भ्रष्ट करने के दोषी हैं। बाड़ी जब खुद ही खेत को चर जाय तो फिर किससे रखवाली की आशा करे? बाइबिल में कहा है—"नौन जब खुद अलौना होजाय तब उसे कौन चीज़ नमकीन बना सकती है?"

यह प्रश्न ऐसा है कि इसे न तो कोई जांच-कमेटी ही हल कर सकती है, न सरकार ही। यह तो एक नैतिक सुधार का काम है। माता-पिताओं के दिल में उनके उत्तरदायित्व का भाव पैदा करना चाहिए। विद्यार्थियों को शुद्ध स्वच्छ रहन-सहन के निकट संसर्ग में लाना चाहिए। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षा का आधार-स्तम्भ है, इस विचार का गंभीरता के साथ प्रचार करना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओं के ट्रस्टियों को अध्यापकों के चुनाव में बहुत ही खबरदारी रखनी चाहिए और अध्यापकों को चुनने के बाद भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण ठीक है या नहीं? ये तो मैंने थोड़े-से उपाय बतलाये हैं। इन उपायों के सहारे यह भयंकर दुराचार निर्मूल न हो तो कम-से-कम काबू में तो आ ही सकता है।

हरिजन-सेवक,
३ मई, १९३५

: १५ :

नम्रता की आवश्यकता

बंगाल में कार्यकर्ताओं से बातचीत करते हुए एक नवयुवक से मेरा साबका पड़ा, जिसने कहा कि लोग उसे इसलिए भी मानें कि वह ब्रह्मचारी है। उसने यह बात इस तरह कही और ऐसे यक़ीन के साथ कही कि मैं देखता रह गया। मैंने मन में कहा कि यह उन विषयों की बातें करता है जिनका ज्ञान इसे बहुत थोड़ा है। उसके साथियों ने उसकी बात का खंडन किया और जब मैंने उससे जिरह करनी शुरू की तब तो खुद उसने भी कबूल किया कि हां, उसका दावा टिक नहीं सकता। जो शख्स शारीरिक पाप चाहे न करता हो; पर मानसिक पाप ही करता हो, वह ब्रह्मचारी नहीं। जो व्यक्ति परम रूपवती रमणी को देखकर अविचल नहीं रह सकता वह ब्रह्मचारी नहीं। जो केवल आवश्यकता के वशीभूत होकर अपने शरीर को वश में रखता है, वह करता तो अच्छी बात है; पर वह ब्रह्मचारी नहीं। हमें अनुचित अप्रासंगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दों का मान न घटाना चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्य का फल तो अद्भुत होता है; और वह तो पहचाना भी जा सकता है। इस गुण का पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे लोग करते हैं; पर सफल विरले ही होते हैं। जो लोग गेरुए कपड़े पहनकर संन्यासियों के वेश में देश में घूमते-फिरते हैं, वे अक्सर बाज़ार के मामूली आदमी से ज्यादा ब्रह्मचारी नहीं होते। फर्क इतना ही है कि मामूली आदमी अक्सर उसकी डींग नहीं हांकता और इसलिए बेहतर होता है। वह इस बात पर संतुष्ट रहता है कि परमात्मा मेरी आजमाइश को, मेरे प्रलोभनों को तथा मेरे विजयोत्सव और भगीरथ प्रयत्न के होते हुए भी हो जानेवाले पतन को जानता है।

यदि दुनिया उसके पतन को देखे और उससे उसे तोले तो भी वह संतुष्ट रहता है। अपनी सफलता को वह कंजूस के धन की तरह छिपा कर रखता है। वह इतना विनयी होता है कि उसे प्रकट नहीं करता। ऐसा मनुष्य उद्धार की आशा रख सकता है; परंतु वह आधा संन्यासी, जो कि संयम का ककहरा भी नहीं जानता, यह आशा नहीं रख सकता। वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो कि संन्यासी का वेष नहीं बनाते; पर जो अपने त्याग और ब्रह्मचर्य का ढिंढोरा पीटते फिरते हैं और दोनों को सस्ता बताते हैं तथा अपनेको और अपने सेवा-कार्य को बदनाम करते हैं, उनसे खतरा समझिये।

जब कि मैंने अपने साबरमतीवाले आश्रम के लिए नियम बनाए तो उन्हें मित्रों के पास सलाह और समालोचना के लिए भेजा। एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जी को भी भेजी थी। उस प्रति की पहुंच लिखते हुए उन्होंने सलाह दी कि नियमों में उल्लिखित व्रतों में नम्रता का भी एक व्रत होना चाहिए। अपने पत्र में उन्होंने कहा था कि आजकल के नवयुवकों में नम्रता का अभाव पाया जाता है। मैंने उनसे कहा कि मैं आपकी सलाह के मूल्य को तो मानता हूं और नम्रता की आवश्यकता को भी सोलहों-आना मानता हूं; पर एक व्रत में उसको स्थान देना उसके गौरव को कम कर देना है। यह बात तो हमें मान करके ही चलना चाहिए कि जो लोग अहिंसा, ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे वे अवश्य ही नम्र रहेंगे। नम्र-हीन सत्य एक उद्धत हास्य-चित्र होगा। जो सत्य का पालन करना चाहता है वह जानता है कि वह कितनी कठिन बात है। दुनिया उसकी विजय पर तो तालियां बजायगी, पर वह उसके पतन का हाल बहुत कम जानती है। सत्य-परायण मनुष्य बड़ा आत्म-ताड़न करनेवाला होता है। उसे नम्र बनने की आवश्यकता है। जो शख्स सारे संसार के साथ, यहांतक कि उसके भी साथ जो उसे अपना शत्रु कहता हो, प्रेम करना चाहता है वह जानता है कि केवल अपने बल पर ऐसा करना किस तरह असंभव है। जबतक वह अपनेको एक क्षुद्र रज-कण न समझने लगेगा तबतक वह अहिंसा के तत्व को नहीं ग्रहण कर सकता। जिस प्रकार उसके प्रेम की मात्रा बढ़ती जाती है उसी प्रकार यदि उसकी नम्रता

की मात्रा न बढ़ी तो वह किसी काम का नहीं। जो मनुष्य अपनी आंखों में तेज लाना चाहता है, जो स्त्रीमात्र को अपनी सगी माता या बहन मानता है उसे तो रज-कण से भी क्षुद्र होना पड़ेगा। उसे एक खाई के किनारे समझिए। ज़रा ही मुंह इधर-उधर हुआ कि गिरा। वह अपने मन से भी अपने गुणों की कानाफूसी करने का साहस नहीं कर सकता; क्योंकि वह नहीं जानता कि इसी अगले क्षण में क्या होनेवाला है? उसके लिए 'अभिमान विनाश के पहले जाता है और मग़रूरी पतन के पहले।' गीता में सच कहा है—

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्यं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

और जबतक मनुष्य के मन में अहंभाव मौजूद है तबतक उसे ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। यदि वह ईश्वर में मिलना चाहता हो तो उसे शून्यवत् होजाना चाहिए। इस संघर्ष-पूर्ण जगत में कौन कहने का साहस कर सकता है कि मैंने विजय प्राप्त की? हम नहीं, ईश्वर हमें विजय प्राप्त कराता है।

हमें इन गुणों का मूल्य ऐसा कम न कर देना चाहिए कि जिससे हम सब उनका दावा कर सकें। जो बात भौतिक विषय में सत्य है वही आध्यात्मिक विषय में भी सत्य है। यदि एक सांसारिक संग्राम में विजय पाने के लिए योरोप ने पिछले युद्ध में, जोकि स्वयं ही एक नाशवान् वस्तु है, कितने ही करोड़ लोगों का बलिदान कर दिया, तब यदि आध्यात्मिक युद्ध में करोड़ों लोगों को इसके प्रयत्न में मिट जाना पड़े, जिससे कि संसार के सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाय तो क्या आश्चर्य है? यह हमारे आधीन है कि हम असीम नम्रता के साथ इस बात का उद्योग करें।

इन उच्च गुणों की प्राप्ति ही उनके लिए परिश्रम का पुरस्कार है। जो उसपर व्यापार चलाता है वह अपनी आत्मा का नाश करता है। सद्गुण कोई व्यापार करने की चीज़ नहीं है। मेरा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य, ये मेरे और मेरे कर्ता से संबन्ध रखनेवाले विषय हैं। वे बिक्री की चीजें नहीं हैं। जो युवक उनकी तिजारत करने का साहस करेगा वह अपना ही नाश कर बैठेगा। संसार के पास कोई बाट ऐसा नहीं है, कोई साधन नहीं है, जिससे कि इन बातों की तोल की जा सके। छान-बीन

और विश्लेषण की वहां गुज़र नहीं। इसलिए हम कार्यकर्ताओं को चाहिए कि हम उन्हें केवल अपने शुद्धीकरण के लिए प्राप्त करें। हम दुनिया से कह दें कि वह हमारे कार्यों से हमारी पहचान करे। जो संस्था या आश्रम लोगों से सहायता पाने का दावा करता हो, उसका लक्ष्य भौतिक-सांसारिक होना चाहिए जैसे—कोई अस्पताल, कोई पाठशाला, कोई कताई और खादी-विभाग। सर्वसाधारण को इन कामों की योग्यता परखने का अधिकार है और यदि वे उन्हें पसंद करें तो उनकी सहायता करें। शर्तें स्पष्ट हैं। व्यवस्थापकों में नेक-नीयती और योग्यता होनी चाहिए। वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षा-शास्त्र से अपरिचित हो, शिक्षक के रूप में लोगों से सहायता पाने का दावा नहीं कर सकता। सार्वजनिक संस्थाओं का हिसाब-किताब ठीक-ठीक रखा जाना चाहिए, जिससे कि लोग जब चाहें तब देख-भाल सकें। इन शर्तों की पूर्ति संचालकों को करनी चाहिए। उसकी सच्चरित्रता लोगों के आदर और आश्रम के लिए भाररूप न होनी चाहिए।

हरिजन सेवक,
२५ जून, १९३५

: १६ :

सुधारकों का कर्त्तव्य

लाहौर के सनातनधर्म कालेज के प्रिंसिपल का निम्नलिखित पत्र मैं सहर्ष यहां प्रकाशित कर रहा हूं :

"बालकों पर जो अप्राकृतिक अत्याचार हो रहे हैं उनकी ओर मैं अधिक-से-अधिक ज़ोर देकर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमें से बहुत ही थोड़े मामलों की पुलिस में रपट लिखाई जाती है, या उन्हें अदालत में ले जाते हैं। इधर कुछ दिनों से पंजाब में ऐसे केस इतने ज्यादा होने लगे हैं कि जिनकी कोई हद नहीं। इस पत्र के साथ आपके अवलोकनार्थ अख़बारों की कुछ कतरनें भेज रहा हूं। अदालत में कभी-कभी जो एकाध मामले आते हैं, उनमें से अत्यंत बीभत्स किस्से ही अख़बारों में प्रकाशित होते हैं। इन्हें पढ़कर आपको यह पूरी तरह से मालूम हो जायगा कि हमारे कोमल वयस्क बालक-बालिकाओं पर इस भय का किस क़दर आतंक छाया हुआ है। कुछ महीने पहले लाहौर में गुंडों ने दिन-दहाड़े कुछ स्कूलों के फाटकों पर से छोटे-छोटे बच्चों को उठा ले जाने के साहसिक प्रयत्न किये थे। आज भी बालकों के स्कूल में जाते और आते वक्त ख़ास इंतज़ाम रखना पड़ता है। अदालत में जो मामले गये हैं, उनकी रिपोर्टों में बालकों के ऊपर किये गए जिन आक्रमणों का वर्णन आया है वे अत्यंत क्रूरता और साहसपूर्ण हैं। ऐसे राक्षसी काम विरले ही मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण जनता या तो इस विषय में उदासीन है, या वह इस तरह की लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधों को संगठित होकर कुचल देने की लोगों में आत्म-श्रद्धा नहीं।

पंजाब-सरकार के जारी किये गए सरकुलर की जो नकल इसके साथ मैं भेज रहा हूं, उससे आपको यह पता चल जायगा कि जनता और सरकारी अफसरों की उदासीनता के कारण सरकार भी इस विषय में अपनेको लाचार-सा अनुभव करती है।

आपने 'यंग इंडिया' के ९ सितंबर १९२६ के तथा २७ जून १९२९ के अंक में यह ठीक ही कहा था कि इस प्रकार के अप्राकृतिक व्यभिचार के अपराधों के संबंध में सार्वजनिक चर्चा करने का समय आ गया है और इस विषय में सारे देश में लोकमत जागृत करने के लिए अख़बारों द्वारा इन जुर्मों का प्रकाशन ही एक-मात्र प्रभावोत्पादक उपाय है।

मैं आपको अत्यंत आदर के साथ यह बतलाना चाहता हूं कि आज की मौजूदा स्थिति में कम-से-कम इतना तो हमें करना ही चाहिए। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस दुराचार के विरुद्ध अख़बारों द्वारा ज़ोरदार आंदोलन चलाने के लिए आप अपनी प्रभावशाली आवाज़ उठाकर अख़बारों को रास्ता दिखाइए।"

इस बुराई के ख़िलाफ़ हमें अविश्रांत लड़ाई लड़नी चाहिए, इस विषय में तो शंका हो ही नहीं सकती। इस पत्र के साथ जो अत्यंत घृणोत्पादक रिपोर्ट भेजी गई थीं, उन्हें मैंने पढ़ डाला है। सनातनधर्म कालेज के आचार्य ने मेरे जिन लेखों का उल्लेख किया है, उनमें जिस किस्म के मामलों की मैंने चर्चा की थी, उससे ये मामले जुदे ही प्रकार के हैं। वे मामले अध्यापकों की अनीति के थे, जिनमें उन्होंने बालकों को फुसलाया था और इन रिपोर्टों में अधिकतर जिन मामलों का वर्णन आया है, उनमें तो गुंडों ने कोमल वय के बालकों पर अप्राकृतिक व्यभिचार करके उनका खून किया है। अप्राकृतिक व्यभिचार और उनके बाद खून किये जाने के केस हालांकि और भी अधिक घृणा पैदा करनेवाले मालूम होते हैं, तो भी मेरा यह विश्वास है कि जिन मामलों में बालक जान-बूझकर अध्यापकों की विषय-वासना के शिकार होते हैं, उनकी अपेक्षा इस प्रकार के मामलों का इलाज करना सहज है। दोनों के ही विषय में सुधारकों के सतत जागृत रहने और इस बीभत्स कार्य के संबंध में लोगों की अंतरात्मा जगाने की आवश्यकता है। पंजाब में चूंकि इस किस्म के अपराध अधिक होने

लगे हैं, इसलिए वहां के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे जाति और धर्म का भेद एक तरफ रखकर एक जगह इकट्ठे हों, और बालकों को फुसलाकर फंसानेवाले या उन्हें उठा ले जाकर उनके साथ अप्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करनेवाले अपराधियों के पंजे से इस पंचनद प्रदेश के कोमल वयस्क युवकों को बचाने के उपाय का आयोजन करें। अपराधियों की निंदा करनेवाले प्रस्ताव पास करने से कुछ भी होनेवाला नहीं है। पाप-मात्र भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग हैं और सुधारकों को उन्हें ऐसा रोग समझकर ही उनका इलाज करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुलिस इन मामलों को सार्वजनिक अपराध समझने का अपना काम मुल्तवी रखेगी; किंतु पुलिस जो कार्रवाई करती है, उसकी मंशा इन सामाजिक अव्यवस्थाओं के मूल कारण ढूंढकर उन्हें दूर करने की होती ही नहीं। यह तो सुधारकों का खास अधिकार है। और अगर समाज में सदाचार के विषय की भावना और आग्रह न बढ़ा, तो अखबारों में दुनियाभर के लेख लिखे जायं तो भी ऐसे अपराध और बढ़ते ही जायंगे। इसका कारण यही है कि इस उलटे रास्ते पर जाने-वाले लोगों की नैतिक भावना कुंठित हो जाती है और वे अखबारों को—खासकर उन भागों को जिनमें ऐसे-ऐसे दुराचारों के विरुद्ध जोश से भरी हुई नसीहतें होती हैं—शायद ही कभी पढ़ते हों। इसलिए मुझे भी यह एक ही प्रभावकारक मार्ग सूझ रहा है कि सनातनधर्म कालेज के प्रिंसिपल (यदि वे उनमें से एक हों तो) जैसे कुछ उत्साही सुधारक दूसरे सुधारकों को एकत्रित करें और इस बुराई को दूर करने के लिए कुछ सामूहिक उपाय हाथ में लें।

हरिजन-सेवक,
२ नवंबर, १९३५

: १७ :

नवयुवकों से !

आजकल कहीं-कहीं नवयुवकों की यह आदत-सी पड़ गई है कि बड़े-बूढ़े जो-कुछ कहें वह नहीं मानना चाहिए। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि उसके ऐसा मानने का बिल्कुल कोई कारण ही नहीं है; लेकिन देश के युवकों को इस बात से आगाह जरूर करना चाहता हूं कि बड़े-बूढ़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हरेक बात को सिर्फ इसी कारण मानने से इन्कार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ों ने कहा है। अक्सर बुद्धि की बात बच्चों तक के मुंह से जैसे निकल जाती है, उसी तरह बहुधा बड़े-बूढ़ों के मुंह से निकल जाती है। स्वर्ण नियम तो यही है कि हरेक बात को बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसा जाय, फिर वह चाहे किसीकी कही या बताई हुई क्यों न हो।

कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह की बात पर मैं अब आता हूं। हमारे अंदर यह बात जमा दी गई है कि अपनी विषय-वासना की पूर्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्तव्य है; जैसे वैध रूप में लिये हुए कर्ज़ को चुकाना हमारा कर्तव्य है; और अगर हम ऐसा न करें तो उससे हमारी बुद्धि कुंठित हो जायगी। इस विषयेच्छा को संतानोत्पत्ति की इच्छा से पृथक् माना जाता है और संतति-निग्रह के लिए कृत्रिम-साधनों के समर्थकों का कहना है कि जबतक सहवास करने वाले स्त्री-पुरुष को बच्चे पैदा करने की इच्छा न हो तबतक गर्भ-धारण नहीं होने देना चाहिए। मैं बड़े साहस के साथ यह कहता हूं कि यह ऐसा सिद्धांत है, जिसका कहीं भी प्रचार करना बहुत खतरनाक है; और हिंदुस्तान-जैसे देश के लिए तो, यहां मध्य-श्रेणी के पुरुष अपनी जननेंद्रिय का दुरुपयोग करके अपना पुरुषत्व ही खो बैठे हैं; यह और भी बुरा है। अगर विषयेच्छा की पूर्ति कर्तव्य

हो, तब तो जिस अप्राकृतिक व्यभिचार के बारे में कुछ समय पहले मैंने लिखा था उसे तथा कामपूर्ति के कुछ अन्य उपायों को भी ग्रहण करना होगा। पाठकों को याद रखना चाहिए कि बड़े-बड़े आदमी भी ऐसे काम पसंद करते मालूम पड़ रहे हैं जिन्हें आमतौर पर वैषयिक पतन माना जाता है। संभव है कि इस बात से पाठकों को कुछ ठेस लगे; लेकिन अगर किसी तरह इसपर प्रतिष्ठा की छाप लग जाय तो बालक-बालिकाओं में अप्राकृतिक व्यभिचार का रोग बुरी तरह फैल जायगा। मेरे लिए तो कृत्रिम साधनों के उपयोग से कोई खास फ़र्क़ नहीं है, जिन्हें लोगों ने अभीतक अपनी विषयेच्छा-पूर्ति के लिए अपनाया है, और जिनसे ऐसे कुपरिणाम आये हैं कि बहुत कम लोग उनसे परिचित हैं। स्कूली लड़के-लड़कियों में गुप्त व्यभिचार ने क्या तूफान मचाया है, यह मैं जानता हूं। विज्ञान के नाम पर संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों के प्रवेश और प्रख्यात सामाजिक नेताओं के नाम से उनके छपाने से स्थिति आज और भी पेचीदा हो गई है और सामाजिक जीवन की शुद्धता के लिए सुधारों का काम बहुत-कुछ असम्भव-सा हो गया है। पाठकों को यह बताकर मैं अपने-पर किये गए किसी विश्वास को भंग नहीं कर रहा हूं कि स्कूल-कालिजों में ऐसी अविवाहित जवान लड़कियां भी हैं, जो अपनी पढ़ाई के साथ-साथ कृत्रिम संतति-निग्रह के साहित्य व मासिक पत्रों को बड़े चाव से पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनों को अपने साथ रखती हैं। इन साधनों को विवाहिता स्त्रियोंतक ही सीमित रखना असंभव है। और, विवाह की पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है, जब कि उसके स्वाभाविक परिणाम संतानोत्पत्ति को छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासना की पूर्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि जो विद्वान् स्त्री-पुरुष संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों के पक्ष में बड़ी लगन के साथ प्रचार कार्य कर रहे हैं, वे इस झूठे विश्वास के साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियों की रक्षा होती है, जिन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध बच्चों का भार सम्भालना पड़ता है, देश के युवकों की ऐसी हानि कर रहे हैं, जिसकी कभी पूर्ति ही नहीं हो सकती। जिन्हें अपने बच्चों की संख्या सीमित करने की ज़रूरत है, उनतक तो आसानी

से वे पहुंच भी नहीं सकेंगे; क्योंकि हमारे यहां की ग़रीब स्त्रियों को पश्चिमी-स्त्रियों की भांति ज्ञान या शिक्षण कहां प्राप्त है ? यह भी निश्चय है कि मध्य-श्रेणी की स्त्रियों की ओर से भी यह प्रचार-कार्य नहीं हो रहा है; क्योंकि इस ज्ञान की उन्हें उतनी ज़रूरत ही नहीं है, जितनी कि ग़रीब लोगों को है।

इस प्रचार-कार्य से सबसे बड़ी जो हानि हो रही है, वह तो पुराने आदर्श को छोड़कर उसकी जगह एक ऐसे आदर्श को अपनाना है, जो अगर अमल में लाया गया तो जाति का नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है। प्राचीन शास्त्रों ने व्यर्थ वीर्य-नाश को जो भयावह बताया है, वह कुछ अज्ञान-जनित अंध-विश्वास नहीं है। कोई किसान अपने पास के सबसे बढ़िया बीज को बंजर ज़मीन में बोवे, या बढ़िया खाद से खूब उपजाऊ बने हुए किसी खेत के मालिक को इस शर्त पर बढ़िया बीज मिले कि उसके लिए उसकी उपज करना ही संभव न हो तो उसे हम क्या कहेंगे ? परमेश्वर ने कृपा करके पुरुष को तो बहुत बढ़िया बीज दिया है और स्त्री को ऐसा बढ़िया खेत दिया है कि जिससे बढ़िया इस भू-मंडल में कोई मिल ही नहीं सकता। ऐसी हालत में मनुष्य अपनी बहुमूल्य सम्पत्ति को व्यर्थ जाने दे तो यह उसकी दंडनीय मूर्खता है। उसे तो चाहिए कि अपने पास के बढ़िया-से-बढ़िया हीरे-जवाहरात अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओं की वह जितनी देख-भाल रखता हो, उससे भी ज्यादा इसकी सार-संभाल करे। इसी प्रकार वह स्त्री भी अक्षम्य मूर्खता की ही दोषी है, जो अपने जीवन-उत्पादक क्षेत्र में जान-बूझ कर व्यर्थ जाने देने के विचार से बीज को ग्रहण करे। दोनों ही उन्हें मिले हुए गुणों का दुरुपयोग करने के दोषी होंगे और उनसे उनके ये गुण छिन जायंगे। विषयेच्छा एक सुंदर और श्रेष्ठ वस्तु है, इसमें शर्म की कोई बात नहीं है; किन्तु यह है संतानोत्पत्ति के लिए। इसके सिवा इसका कोई उपयोग किया जाय तो वह परमेश्वर और मानवता के प्रति पाप होगा। संतति-निग्रह के कृत्रिम उपाय किसी-न-किसी रूप में पहले भी थे और बाद में भी रहेंगे; परन्तु पहले उनका उपयोग पाप माना जाता था। व्यभिचार को सद्गुण कहकर उसकी प्रशंसा करने का काम हमारे ही युग के लिए सुरक्षित रखा हुआ था। कृत्रिम साधनों के

हिमायती हिंदुस्तान के नौजवानों की जो सबसे बड़ी हानि कर रहे हैं वह उनके दिमाग़ में ऐसी विचार-धारा भर देता है, जो मेरे ख़याल में, ग़लत है। भारत के नौजवान स्त्री-पुरुषों का भविष्य उनके अपने ही हाथों में है। उन्हें चाहिए कि इस झूठे प्रचार से सावधान हो जायं और जो बहु-मूल्य वस्तु परमेश्वर ने उन्हें दी है, उसकी रक्षा करें, और जब वे उसका उपयोग करना चाहें तो सिर्फ उसी उद्देश्य से करें कि जिसके लिए वह उन्हें दिया गया है।

हरिजन-सेवक,
२८ मार्च, १९३६

: १८ :

भ्रष्टता की ओर

एक युवक ने लिखा है :

"संसार का काया-कल्प करने के लिये आप चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो जाय; पर मेरी समझ में ठीक-ठीक नहीं आ रहा है। आखिर इस सच्चरित्रता से आप का क्या अभिप्राय है? यह केवल स्त्री-पुरुष तक ही सीमित है या आपका मतलब मनुष्य के समस्त व्यवहारों से है? मुझे तो शक है कि आपका मतलब केवल स्त्री-पुरुष के संबंध तक ही सीमित है, क्योंकि आप अपने पूंजीपति और जमींदार दोस्तों को तो कभी-कभी यह बताने का कष्ट नहीं करते कि वे कैसे अन्याय-पूर्वक मजदूरों और किसानों का पेट काट-काट कर अपनी जेब भरते रहते हैं। वहां बेचारे युवक और युवतियों की चारित्रिक गलतियों पर उनकी निंदा और ताड़ना करते हुए आप कभी थकते नहीं; और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-व्रत का आदर्श उपस्थित करते रहते हैं। आपका यह दावा है कि आप भारतीय युवकों के हृदय को जानते हैं। मैं किसी का प्रतिनिधि होने का दावा नहीं करता; पर एक युवक की हैसियत से ही मैं कहता हूं कि आपका यह दावा ग़लत है। मालूम होता है, आपको पता ही नहीं कि आजकल के मध्यम-वर्ग के युवक को किन परिस्थितियों में से गुजरना पड़ता है। बेकारी की यह भयंकर चिंता, आदमी को पीस डालनेवाली ये सामाजिक रूढ़ियां और परम्पराएं, और सहशिक्षा का यह प्रलोभनकारी विघातक वातावरण, इनके बीच वह बेचारा आन्दोलित होता रहता है। नवीनता और प्राचीनता का यह संघर्ष उसकी सारी शक्तियों को चूर-चूर कर रहा है और वह हारकर लाचार हो रहा है। मैं आपसे हाथ जोड़

कर प्रार्थना करता हूं कि इन बेचारों को थोड़ी रहम की नज़र से देखिए, दया कीजिए। उन्हें कृपया अपने संन्यासाश्रम के नीतिशास्त्र की कसौटी पर न कसिए। मेरा तो ख़याल है कि अगर दोनों की मर्ज़ी हो और परस्पर प्रेम हो तो स्त्री-पुरुष, चाहे वे पति-पत्नी न भी हों तो भी आख़िर जो चाहें, कर सकते हैं। मेरी राय में तो वह सदाचार ही होगा। और जबसे संतति-नियमन के कृत्रिम साधनों का आविष्कार हुआ है, संयोग व्यवस्था की दृष्टि से विवाह-प्रथा का नैतिक आधार तो छिन्न-भिन्न हो गया है। अब तो केवल बच्चों के पालन-पोषण और रक्षा-भर के लिए उसका उपयोग रह गया है। ये बातें सुनकर शायद आपके दिल को चोट पहुंचेगी; पर मैं प्रार्थना करता हूं कि आजकल के युवकों को भला-बुरा कहने से पहले कृपया अपनी तरुणाई को न भूलियेगा। आप खुद क्या कम कामी थे। कितना विषय-भोग करते थे ? मैथुन के प्रति आपकी घृणा शायद आपकी इस अति का ही परिणाम है। इसलिए अब आप ऐसे संन्यासी बन रहे हैं और इसमें आपको पाप-ही-पाप नज़र आता है। अगर तुलना ही करने लगें तो मेरा खयाल है कि आजकल के कई युवक इस विषय में ज़रूर आपसे बेहतर साबित होंगे।"

इस तरह के अनेक पत्र मेरे पास आते हैं। इस युवक से मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होंगे; पर इतने थोड़े समय में ही जहां तक मुझे पता है, इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके हैं। अब भी वह एक गंभीर परिस्थिति में से ही गुज़र रहा है। ऊपर का उद्धरण तो उसके एक लंबे पत्र का अंश है। उसके और भी पत्र मेरे पास हैं, जिन्हें अगर मैं चाहूं तो प्रकाशित कर सकता हूं, और उसे प्रसन्नता ही होगी; पर मैंने ऊपर जो अंश दिया है वह कितने ही युवकों के विचारों और प्रवृत्तियों को प्रकट करता है।

बेशक युवक और युवतियों से मुझे अवश्य सहानुभूति है। अपनी जवानी के दिनों की भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे तो देश के युवकों पर श्रद्धा है, इसीलिए तो उनकी समस्याओं पर विचार करते हुए मैं कभी थकता नहीं।

मेरे लिए तो नीति, सदाचार और धर्म एक ही बात है। आदमी

अगर पूरी तरह से सदाचारी हो, पर धार्मिक न हो, तो उसका जीवन बालू-पर खड़े किये गए मकान की तरह समझिए। इसी तरह भ्रष्ट चरित्र का धर्माचरण भी दूसरों को दिखाने-भर के लिए और साम्प्रदायिक उपद्रवों का कारण होता है। नीति में सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य भी आ जाता है। मनुष्य जाति ने आज तक सदाचार के जितने नियमों का पालन किया है वे सब इन तीन सर्व-प्रधान गुणों से सम्बन्धित या प्राप्त हो सकते हैं। और अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य सत्य से प्राप्त हो सकते हैं, जो मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

संयम-हीन स्त्री या पुरुष तो गया-बीता समझिए। इन्द्रियों को निरंकुश छोड़ देनेवाले का जीवन कर्णधार-हीन नाव के समान है, जो निश्चय ही पहली चट्टान से ही टकराकर चूर-चूर हो जायगी। इसलिए मैं सदैव से संयम और ब्रह्मचर्य पर इतना जोर दे रहा हूं। पत्र-प्रेषक के इस कथन में यहांतक तो जरूर सत्य है कि इन सन्तति-निरोधक साधनों ने स्त्री-पुरुषों की संबंध-विषयक समाज की कल्पनाओं को काफी बदल दिया है; पर अगर संयोग को नीति-युक्त बनाने के लिए स्त्री-पुरुष की—चाहे वे पति-पत्नी हों या न भी हों—केवल पारस्परिक अनुमति ही का होना काफी हो, तब तो इसी युक्ति के अनुसार समान लिंग वाले दो व्यक्तियों के बीच का संबंध भी नीतियुक्त बन जायगा और संयोग-व्यवस्था-संबंधी सारी मर्यादा ही नष्ट हो जायंगी; और तब तो निःसंदेह देश के युवकों के भाग्य में सिवा पराभव और दुर्दशा के और कुछ है ही नहीं। हिंदुस्तान में ऐसे कई पुरुष और स्त्रियां हैं, जो विषय-वासना में बुरी तरह फंसे हुए हैं; पर अगर उससे मुक्त हो सकें तो वे बहुत खुश हों। विषय-वासना संसार के किसी भी नशे से अधिक मादक है। यह आशा करना बेकार है कि संतति-निरोधक साधनों का व्यवहार संतति-नियमन तक ही सीमित रहेगा। हमारे जीवन के शुद्ध, सभ्य रहने की तभी तक आशा की जा सकती है, जबतक कि संयोग से प्रजनन का निश्चित सम्बन्ध है। यह मान लेने पर अप्राकृतिक मैथुन तो बिलकुल उड़ जाता है, और कुछ हद तक पर-स्त्री-गमन पर भी नियंत्रण हो जाता है। संयोग को उसके स्वाभाविक परिणाम से अलग करने का अवश्यंभावी परिणाम यही होगा

कि समाज से स्त्री-पुरुष की संयोग-संबंधी सारी मर्यादा उठ जायगी और अगर सद्भाग्य से अप्राकृतिक व्यभिचार को प्रत्यक्ष प्रोत्साहन न भी मिला तो भी समाज में निर्गुण व्यभिचार फैले बिना नहीं रहेगा।

संयोग-समस्या पर विचार करते समय अपना व्यक्तिगत अनुभव कहना भी अनुचित न होगा। जिन पाठकों ने मेरी 'आत्म-कथा' नहीं पढ़ी है, वे मेरी विषय-लोलुपता के विषय में कहीं इस पत्र-प्रेषक की तरह अपने विचार न बना लें। सबसे पहली बात तो यह है कि मैं चाहे कितना ही विषयी रहा होऊं, मेरी विषय-वृत्ति अपनी पत्नी तक ही सीमित थी। फिर मैं एक बहुत बड़े परिवार में रहता था, जिससे रात के कुछ घंटों को छोड़कर हमें एकांत कभी मिलता ही न था। दूसरे तेईस वर्ष की अवस्था में ही मैं इतना समझने लायक हो गया था कि महज़ भोग के लिए संयोग करना निरी बेवकूफ़ी है और सन् १८८६ में, यानी जब मैं तीस साल का था, पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेने का मैं निश्चय कर चुका था। मुझे संन्यासी कहना ग़लत होगा। मेरे जीवन के नियमात्मक आदर्श तो सारी मानवताके लिए ग्रहण करने योग्य हैं। मैंने उन्हें धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों मेरा जीवनविकास होता गया, प्राप्त किया है। हरेक क़दम मैंने पूरी तरह सोचसमझकर गहरे मनन के बाद रखा है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा दोनों मेरे व्यक्तिगत अनुभव से मुझे प्राप्त हुए हैं, और अपने सार्वजनिक कर्तव्यों को पूरा करने के लिए उनका पालन नितान्त आवश्यक था। दक्षिण अफ्रीका में एक गृहस्थ, एक बैरिस्टर, एक समाज-सुधारक अथवा एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से मुझे जनसमूह से पृथक् जीवन व्यतीत करना पड़ा है। उस जीवन में अपने उपर्युक्त कर्त्तव्यों के पालनार्थ मेरे लिए यह ज़रूरी हो गया है कि मैं कठोर संयम का पालन करूं तथा अपने देश-भाइयों और यूरोप-निवासियों के साथ मनुष्य की हैसियत से व्यवहार करते हुए सत्य और अहिंसा का उतनी ही कड़ाई से पालन करूं।

मैं एक मामूली आदमी हूं। मुझमें ज़रा भी विवेक नहीं, और योग्यता तो मामूली से कम है। मेरे इस अहिंसा और ब्रह्मचर्य के व्रत के पालन में भी कोई बधाई देने लायक बात नहीं; क्योंकि ये तो वर्षों के निरन्तर

प्रयास से मेरे लिए साध्य हुआ है। हर पुरुष और स्त्री साध्य कर सकते हैं, बशर्ते कि वे भी उसी प्रयास, आशा और श्रद्धा से चलें। श्रद्धाहीन कार्य अतल खाई की थाह लेने का प्रयत्न करने की तरह है।

हरिजन-सेवक,

३ अक्तूबर, १९३६

: १६ :

एक युवक की कठिनाई

नवयुवकों के लिए मैंने 'हरिजन' में जो लेख लिखा था, उस पर एक नवयुवक, जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है, अपने मन में उठे एक प्रश्न का उत्तर चाहता है। यों गुमनाम पत्रों पर कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है; लेकिन जब कोई सारयुक्त बात पूछी जाय, जैसी कि इसमें पूछी गई है, तो कभी-कभी मैं इस नियम को तोड़ भी देता हूं।

पत्र हिंदी में है और कुछ लंबा है। उसका सारांश यह है—

"आपके लेखों को पढ़कर मुझे सन्देह होता है कि आप युवकों के स्वभाव को कहांतक समझते हैं। जो बात आपके लिए संभव हो गई है वह सब युवकों के लिए संभव नहीं है। मेरा विवाह हो चुका है। इतने पर भी मैं स्वयं तो संयम कर सकता हूं; लेकिन मेरी पत्नी ऐसा नहीं कर सकती। बच्चे पैदा हों, यह तो वह नहीं चाहती; लेकिन विषयोपभोग करना चाहती है। ऐसी हालत में, मैं क्या करूं? क्या यह मेरा फ़र्ज़ नहीं है कि मैं उसकी भोगेच्छा को तृप्त करूं? दूसरे ज़रिये से वह अपनी इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझमें नहीं है। फिर अख़बारों में जो पढ़ता रहा हूं, उससे मालूम पड़ता है कि विवाह-संबंध कराने और नव-दंपतियों को आशीर्वाद देने में भी आपको कोई आपत्ति नहीं है। यह तो आप अवश्य जानते होंगे, या आपको जानना चाहिए कि वे सब उस ऊंचे उद्देश्य से ही नहीं होते जिसका कि आपने उल्लेख किया है।"

पत्र-लेखक का कहना ठीक है। विवाह के लिए उम्र, आर्थिक स्थिति आदि की एक कसौटी मैंने बना रखी है। उसको पूरा करके जो विवाह होते हैं, मैं उनकी मंगल-कामना करता हूं। इतने विवाहों में मैं शुभ-कामना

करता हूं, इससे संभवतः यही प्रकट होता है कि देश के युवकों को इस हद तक मैं जानता हूं कि यदि वे मेरा पथ-प्रदर्शन चाहें तो मैं वैसा कर सकता हूं।

इस भाई का मामला मानो इस तरह का एक नमूना है जिसके कारण यह सहानुभूति का पात्र है; लेकिन संयोग का एक-मात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिए एक प्रकार से नई खोज है। इस नियम को जानता तो मैं पहले से था; लेकिन जितना चाहिए उतना महत्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था। अभी तक मैं इसे पवित्र इच्छा-मात्र समझता था। लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवन का ऐसा मौलिक विधान मानता हूं कि यदि इसके महत्व को पूरी तरह मान लिया गया तो इसका पालन कठिन नहीं है। जब समाज में इस नियम को उपयुक्त स्थान मिल जायगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा; क्योंकि मेरे लिए तो यह जाज्वल्यमान विधान है। जब हम इसको भंग करते हैं, तो उसके दण्डस्वरूप बहुत-कुछ भुगतना पड़ता है। पत्र-प्रेषक युवक यदि इसके उस महत्त्व को समझ जाय, जिसका कि अनुमान नहीं लगाया जा सकता है और यदि उसे अपने में विश्वास एवं अपनी पत्नी के लिए प्रेम हो, तो वह अपनी पत्नी को भी अपने विचारों का बना लेगा। उसका यह कहना कि मैं स्वयं संयम कर सकता हूं क्या यह सच है? क्या उसने अपनी पाशविक वासनाओं को जन-सेवा जैसी किसी ऊंची भावना में परिणत कर लिया है? क्या स्वभावतः वह ऐसी कोई बात नहीं करता, जिससे उसकी पत्नी की विषय-भावना को प्रोत्साहन मिले? उसे जानना चाहिए कि हिंदू-शास्त्रानुसार आठ तरह के सहवास माने गए हैं, जिनमें संकेतों द्वारा विषय-प्रवृत्ति को प्रेरित करना भी शामिल है। क्या वह इससे मुक्त है? यदि वह ऐसा हो और सच्चे दिल से यह चाहता हो कि उसकी पत्नी में भी विषय-वासना न रहे तो वह उसे शुद्धतम प्रम से सराबोर करे उसे यह नियम समझावे, संतानोत्पत्ति की इच्छा के बग़ैर सहवास करने से शारीरिक हानि होती है वह उसे समझावे और वीर्य-रक्षाका महत्व बतलावे। अलावा इसके उसे चाहिए कि अपनी पत्नी को अच्छे कामों की ओर प्रवृत्त करके उनमें उसे लगाये रखे और उसकी

विषय-वृत्ति को शांत करने के लिए उसके भोजन, व्यायाम आदि को नियमित करने का यत्न करे। और इस सबसे बढ़कर यदि वह धर्म-प्रवृत्ति का व्यक्ति है, तो अपने उस जीवित विश्वास को वह अपनी सहचरी पत्नी में भी पैदा करने की कोशिश करे, क्योंकि मुझे यह बात कहनी होगी कि ब्रह्मचर्य-व्रत का तब तक पालन नहीं हो सकता जबतक कि ईश्वर में, जोकि जीता-जागता सत्य है, अटूट विश्वास न हो। आजकल तो यह एक फैशन-सा बन गया है कि जीवन में ईश्वर का कोई स्थान नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वर में अडिग आस्था रखने की आवश्यकता के बिना ही सर्वोच्च जीवन तक पहुंचने पर ज़ोर दिया जाता है। मैं अपनी यह असमर्थता कबूल करता हूं कि जो अपने से ऊंची किसी दैवी-शक्ति में विश्वास नहीं रखते, या उसकी ज़रूरत नहीं समझते, उन्हें मैं यह बात समझा नहीं सकता। पर मेरा अपना अनुभव तो मुझे इसी ज्ञान पर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्व का संचालन होता है, उस शाश्वत नियम में अचल विश्वास रखे बिना पूर्णतम जीवन संभव नहीं है। इस विश्वास से विहीन व्यक्ति तो समुद्र से अलग आ पड़नेवाली उस बूंद के समान है, जो नष्ट होकर ही रहती है; परन्तु जो बूंद समुद्र में ही रहती है वह उसकी गौरव-वृद्धि में योग देती है और हमें प्राण-प्रद वायु पहुंचाने का सम्मान उसे प्राप्त होता है।

हरिजन सेवक,

२४ अप्रेल, १९३७

: २० :

विद्यार्थियों के लिए

" 'हरिजन' के पिछले एक अंक में आपने 'एक युवक की कठिनाई' शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसके संबंध में नम्रता-पूर्वक आपको यह लिखरहा हूं। मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थी के साथ न्याय नहीं किया। यह प्रश्न आसानी से हल होनेवाला नहीं। उसके सवाल का आपने जो जवाब दिया है, वह संदिग्ध और सामान्य राय का है। आपने विद्यार्थियों से यह कहा है कि वे झूठी प्रतिष्ठा का खयाल छोड़कर साधारण मज़दूरों की तरह बन जायं। यह सब सिद्धांत की बातें आदमी को कुछ रास्ता नहीं सुझातीं और न आप-जैसे बहुत ही व्यावहारिक आदमी को शोभा देती हैं। इस प्रश्न पर आप अधिक विस्तार के साथ विचार करने की कृपा करें और नीचे मैं जो उदाहरण दे रहा हूं, उसमें क्या रास्ता निकाला जाय, इसका तफसीलवार व्यावहारिक और व्यापक उत्तर दें।

मैं लखनऊ-यूनिवर्सिटी में एम० ए० का विद्यार्थी हूं। प्राचीन भारतीय इतिहास मेरा विषय है, मेरी उम्र करीबन २१ साल की है। मैं विद्या का प्रेमी हूं और मेरी यह इच्छा है कि जीवन में जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकूं, करूं। आपका बताया हुआ जीवन का आदर्श भी मुझे प्रिय है। एकाध महीने में मैं एम० ए० फाइनल की परीक्षा दे दूंगा और मेरी पढ़ाई पूरी हो जायगी। इसके बाद मुझे 'जीवन में प्रवेश' करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पत्नी के अलावा ४ भाइयों, (मुझसे सब छोटे हैं, और एक की शादी भी हो चुकी है) २ बहनों और माता-पिता का पोषण करना है। हमारे पास कोई पूंजी का साधन नहीं है। ज़मीन है; पर बहुत ही थोड़ी।

अपने भाई-बहनों की शिक्षा के लिए क्या करूं ? फिर बहनों की शादी भी तो जल्दी करनी है। इस सबके अलावा घर-भर के लिए अन्न और वस्त्र कहांसे लाकर जुटाऊंगा ?

मुझे मोज व टीमटाम से रहने का मोह नहीं है। मैं और मेरे आश्रित-जन अच्छा निरोगी जीवन बिता सकें, और वक्त-ज़रूरत का काम अच्छी तरह चलता जाय, तो इतने से मुझे संतोष है। दोनों समय स्वास्थ्यकर आहार और ठीक-ठीक कपड़े मिलते जायं, बस इतना ही मेरे सामने सवाल है।

पैसे के बारे में मैं ईमानदारी के साथ रहना चाहता हूं। भारी सूद लेकर या शरीर बेचकर मुझे रोजी नहीं कमानी है। देश-सेवा करने की भी मुझे इच्छा है। अपने इस लेख में आपने जो शर्तें रखी हैं, इन्हें पूरा करने के लिए मैं तैयार हूं।

पर मुझे यह नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूं ? शुरूआत कहां और कैसे की जाय ? शिक्षा मुझे केवल किताबी और अव्यावहारिक मिली है। कभी-कभी मैं सूत कातने का विचार करता हूं; पर कातना सीखें कैसे, और उस सूत का क्या होगा, इसका भी मुझे पता नहीं।

जिन परिस्थितियों में मैं पड़ा हूं, उनमें आप मुझे क्या संतति-नियमन के कृत्रिम साधन काम में लाने की सलाह देंगे ? संयम और ब्रह्मचर्य में मेरा विश्वास है; पर ब्रह्मचारी बनने में मुझे अभी कुछ समय लगेगा। मुझे भय है कि पूर्ण संयम की सिद्धि प्राप्त होने के पूर्व यदि मैं कृत्रिम साधनों का उपयोग नहीं करूंगा, तो मेरी स्त्री के कई बच्चे पैदा हो जायंगे और इस तरह बैठे ठाले मैं आर्थिक बरबादी मोल ले लूंगा। और फिर मुझे ऐसा लगता है कि अपनी स्त्री से, उसके स्वाभाविक भावना-विकास में, कड़े संयम का पालन कराना बिलकुल ही उचित नहीं। आखिरकार साधारण स्त्री-पुरुषों के जीवन में विषय-भोग के लिए तो स्थान है ही; मैं उसमें अपवाद-रूप नहीं हूं। और मेरी स्त्री को, आपके 'ब्रह्मचर्य', 'विषय-सेवन के खतरे' आदि विषयों के महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ने व समझने का मौका नहीं मिला, इसलिए वह इससे भी कम तैयार है।

मुझे अफसोस है कि पत्र ज्यादा लम्बा होगया है; पर मैं संक्षेप में

लिखकर इतनी स्पष्टता के साथ अपने विचार ज़ाहिर नहीं कर सकता था।

इस पत्र का आपको जो उपयोग करना हो वह आप खुशी से कर सकते हैं।"

यह पत्र मुझे फ़रवरी के अंत में मिला था; पर जवाब इसका मैं अब लिख सका हूं। इसमें ऐसे महत्व के प्रश्न उठाये गए हैं कि हरएक की चर्चा के लिए इस अखबार के दो-दो कालम चाहिए; पर मैं संक्षेप में ही जवाब दूंगा।

इस विद्यार्थी ने जो कठिनाइयां बताई हैं, वे देखने में गंभीर मालूम होती हैं; पर वे उसकी खुद की पैदा की हुई हैं। इन कठिनाइयों के नाम निर्देश भर से ही जान लेना चाहिए कि इस विद्यार्थी की और अपने देश की शिक्षा-पद्धति की स्थिति कितनी खोटी है। यह पद्धति शिक्षा को केवल बाज़ारू, बेचकर पैसा पैदा करने की चीज़ बना देती है। मेरी दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य बहुत ऊंचा और पवित्र है। यह विद्यार्थी अगर अपनेको करोड़ों आदमियों से एक माने, तो वह देखेगा कि वह अपनी डिगरी में जो आशा रखता है, वह करोड़ों युवक और युवतियों से पूरी नहीं हो सकती। अपने पत्र में उसने जिन संबंधियों का ज़िक्र किया है उनकी परवरिश के लिए वह क्यों जवाबदार बने? बड़ी उम्र के आदमी अच्छे मज़बूत शरीर के हों, तो वे अपनी आजीविका के लिए मेहनत-मजूरी क्यों न करें? एक उद्योगी मधुमक्खी के पीछे—भले ही वह नर हो—बहुत-सी आलसी मधु मक्खियों का रखना ग़लत तरीक़ा है।

इस विद्यार्थी की उलझन का इलाज, उसने जो बहुत-सी चीज़ें सीखी हैं, उनके भूल जाने में है। उसे शिक्षा-संबंधी अपने विचार बदल देने चाहिए। अपनी बहनों को वह ऐसी शिक्षा क्यों दे, जिसपर इतना ज्यादा पैसा खर्च करना पड़े? वे कोई उद्योग-धंधा वैज्ञानिक रीति से सीखकर अपनी बुद्धि का विकास कर सकती हैं। जिस क्षण वे शरीर के विकास के साथ-साथ मन का विकास कर लेंगी, अगर वे ऐसा करेंगी, उसी क्षण वे अपनेको समाज का शोषण करने वाली नहीं; किंतु सेविकायें समझना सीखेंगी, तो उनके हृदय का अर्थात आत्मा का भी विकास होगा। और वे

अपने भाई के साथ आजीविका के लिए काम करने में समान हिस्सा लेंगी।

पत्र लिखने वाले विद्यार्थी ने अपनी बहनों के ब्याह का उल्लेख किया है। उसकी भी यहां चर्चा कर लूं। शादी 'जल्दी' होगी ऐसा लिखने का क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता। २० साल की उम्र न हो जाय, तबतक उनकी शादी करने की जरूरत ही नहीं और अगर वह अपने जीवन का सारा क्रम बदल लेगा तो वह अपनी बहनों को अपना-अपना वर खुद ढूंढ लेने देगा; और विवाह-संस्कार में ५) रुपये से अधिक खर्च होना ही नहीं चाहिए। मैं ऐसे कितने ही विवाहों में उपस्थित रहा हूं, और उनमें उन लड़कियों के पति या उनके बड़े-बूढ़े खासी अच्छी स्थिति के ग्रेजुएट थे।

कातना कहां और कैसे सीखा जा सकता है, उसे इसका भी पता नहीं। उसकी यह लाचारी देखकर करुणा आती है। लखनऊ में वह प्रयत्न-पूर्वक तलाश करे, तो कातना सिखानेवाले उसे वहां कई युवक मिल सकते हैं; पर उसे अकेला कातना सीखकर बैठे रहने की ज़रूरत नहीं, हालांकि सूत कातना भी पूरे समय का धंधा होता जा रहा है, और वह ग्राम-वृत्ति वाले स्त्री-पुरुषों को पर्याप्त आजीविका दे सकनेवाला उद्योग बनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैंने जो कहा है, उसके बाद बाक़ी का सब यह विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अब संतति-नियमन के कृत्रिम साधनों के संबंध में यहां भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। यह विद्यार्थी अपनी स्त्री की बुद्धि को जिस तरह आंक रहा है, वह ठीक नहीं। मुझे तो ज़रा भी शंका नहीं कि अगर वह साधारण स्त्रियों की तरह है, तो पति के संयम के अनुकूल वह सहल हो जायगी। विद्यार्थी खुद अपने मन से पूछ कर देखे कि उसके मन में पर्याप्त संयम है या नहीं? मेरे पास जितने प्रमाण हैं, वे तो सब यही बताते हैं कि संयम-शक्ति का अभाव स्त्री की अपेक्षा पुरुष में ही अधिक होता है; पर इस विद्यार्थी को अपनी संयम रखने की शक्ति कम समझ कर उसे हिसाबमें से निकाल देने की ज़रूरत नहीं। उसे बड़े कुटुम्ब की संभावना का मर्दानगी के साथ सामना करना चाहिए, और उस परिवार के पालन-पोषण करने का अच्छे-से-अच्छा ज़रिया ढूंढ लेना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि करोड़ों आदमियों को इन कृत्रिम साधनों का पता ही

नहीं, इन साधनों को काम में लानेवालों की संख्या तो बहुत-बहुत होगी तो कुछेक हज़ार ही होगी। उन करोड़ों को इस बात का भय नहीं होता कि बच्चों का पालन किस तरह करेंगे, यद्यपि बच्चे वे सब मां-बाप की इच्छा से नहीं होते। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने कर्म के परिणाम का सामना करने से इन्कार न करे। ऐसा करना कायरता है। जो लोग कृत्रिम साधनों को काम में लाते हैं, वे संयम का गुण नहीं सीख सकते। उन्हें इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। कृत्रिम साधनों के साथ भोगा हुआ भोग बच्चों का आना तो रोकेगा; पर पुरुष और स्त्री दोनों की—स्त्री की अपेक्षा पुरुष की अधिक जीवन-शक्ति को वह चूस लेगा। आसुरी वृत्ति के खिलाफ युद्ध करने से इन्कार करना नामर्दी है। पत्र-लेखक अगर अनचाहे बच्चों को रोकना चाहता है, तो उसके सामने एक-मात्र अचूक और सम्मानित मार्ग यही है कि उसे संयम-पालन करने का निश्चय कर लेना चाहिए। सौ बार भी उसके प्रयत्न निष्फल जायं तो भी क्या सच्चा आनन्द तो युद्ध करने में है, उसका परिणाम तो ईश्वर की कृपा से ही आता है।

हरिजन सेवक,
२४ अप्रैल, १९३७

: २१ :

विद्यार्थियों की दशा

एक बहन, जिन्हें अपनी जिम्मेदारी का पूरा खयाल है, लिखती है:

"जबतक हमारे बच्चे वीर्य की रक्षा करना नहीं सीखते, तबतक हिंदुस्तान को जैसे आदमियों की ज़रूरत है, वैसे कभी नहीं मिल सकते। हिंदुस्तान में कोई १६ वर्षों तक, लड़कों के स्कूलों का भार मुझपर रहा है। यह देख कर रुलाई आती है कि हमारे बहुत से हिंदू, मुसलमान, ईसाई लड़के स्कूल की पढ़ाई शुरू करते हैं जोश ताक़त और उम्मीदों से भरकर, लेकिन ख़त्म करते हैं शरीर से निकम्मे बनकर। गिनकर सैंकड़ों बार मैंने देखा है कि इसके कारण का पता ठेठ वीर्य-नाश, अप्राकृतिक कर्म या बाल-विवाह में ही मिलता है। अभी आज मेरे पास ४२ लड़कों के नाम हैं। ये अप्राकृतिक कर्म के दोषी हैं और इनमें से एक भी १३ साल से अधिक का नहीं है। शिक्षक और माता-पिता ऐसी हालत का होना ग़लत मानेंगे; लेकिन अगर सही तरीकों से काम लिया जाय तो व्याधि का पता तुरंत ही लग जायगा और क़रीब-क़रीब हमेशा ही लड़के अपना गुनाह कबूल कर लेंगे। इनमें से अधिक लड़के कहते हैं कि वह ऐब उन्होंने स्याने आदमियों, कभी-कभी अपने संबंधियों से ही सीखा है।"

यह कोई ख़याली तसवीर नहीं है। यह वह सचाई है, जिसे जानने वाले स्कूलों के कितने-एक मास्टर दबा जाते हैं। मैं इसे पहले से जानता था। आज कोई आठ साल हुए, दिल्ली के किसी स्कूल मास्टर ने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया था। इसके इलाज के बारे में अबतक खानगी में ही मैं बातें करता रहा हूं और चुप रहा हूं। यह दोष सिर्फ हिंदुस्तान-भर में ही परिमित नहीं है; मगर बाल विवाह के पाप के कारण हम

पर इसका और भी अधिक मारक प्रभाव पड़ता है। इस बहुत ही नाज़ुक और मुश्किल सवाल की आम चर्चा करना ज़रूरी हो गया है; क्योंकि अब से कुछ साल पहले जिस स्वच्छंदता से स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की बातों पर विचार करना ग़ैर-मुमकिन था, आज उसके साथ हम प्रतिष्ठित समाचार-पत्रों में भी इस पर बहस होते देखते हैं।

संभोग को देह और दिमाग़ की तन्दरुस्ती के लिए फायदेमंद, नैतिक, ज़रूरी और स्वाभाविक समझने की प्रथा ने इस पाप की वृद्धि की है। हमारे सुशिक्षित पुरुषों के गर्भ-निरोधक साधनों के स्वच्छंद व्यवहार के समर्थन ने इस काम-वासना के कीड़ों की वृद्धि के लिए समुचित वातावरण पैदा कर दिया है। कमसिन लड़कों के नाज़ुक और संग्राहक दिमाग़ ऐसे नतीजे बहुत जल्द निकाल लेते हैं कि उनकी अधार्मिक इच्छाएं अच्छी और उचित हैं। इस मारक पाप के प्रति माता-पिता और शिक्षक, बहुत ही बुरी; बल्कि पाप के बराबर, उदासीनता और सहनशीलता दिखलाते हैं। मेरी समझ में, सामाजिक वातावरण को पूरा पूरा शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह को और कुछ नहीं रोक सकता, विषय-भोग के ख़यालों से भरे हुए वातावरण का अज्ञात और सूक्ष्म प्रभाव देश के विद्यार्थियों के मन पर बिना पड़े रह ही नहीं सकता। नागरिक जीवन की परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घर की रचना, कितने एक सामाजिक रिवाज़, सबका एक ही असर होता है; वह है काम-वासना की वृद्धि। छोटे लड़कों के लिए, जिन्हें अपनी इस पाशविक प्रवृत्ति का पता लग गया है, इसके ज़ोर को रोकना ग़ैर-मुमकिन है। ऊपरी इलाज़ों से काम नहीं चलने का। यदि नई पीढ़ी के प्रति वे अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहते हैं तो बड़ों को पहले अपने से ही यह सुधार शुरू करना होगा।

हरिजन-सेवक,

३ अप्रैल, १९३६

: २२ :

ब्रह्मचर्य पर नया प्रकाश

अब एक नई बात आप लोगों से कहना चाहता हूं। सोचा था कि विनोबा सुनायें, पर अब समय है तो स्वयं मैं कहता हूं। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अच्छी बात सबके साथ बंटा लेता हूं। बात का आरम्भ तो बहुत वर्षों पुराना है। मैं जुलू-युद्ध में गया था। देखो, ईश्वर का खेल इसी तरह चलता है। मेरा निश्चय हो गया कि जिसको जगत की सेवा करनी है, उसके लिए ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दंपति को भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इससे मेरा मतलब यह था कि उन्हें प्रजोत्पादन-क्रिया में नहीं पड़ना चाहिए। मैं यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते। इसलिए मैंने ब्रह्मचर्य का आदर्श छगनलाल आदि के सामने रखा। उस वक्त तो मैं बिल्कुल जवान था। और जवान तो सब कुछ कर सकता है। मैं आप से कह दूं कि आप सब ब्रह्मचारी बनें तो क्या वह होने वाली बात है? वह तो एक आदर्श है; इसलिए मैं तो विवाह भी करा देता हूं। एक आदर्श देते हुए भी यह तो जानता ही हूं कि ये लोग भोग भी करेंगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य एक-दूसरे के विरोधी हैं, ऐसा मेरा खयाल रहा।

पर उस दिन बिनोबा मेरे पास एक उलझन ले कर आए। एक शास्त्र-वचन है, जिसकी कीमत मैं पहले नहीं जानता था। उस वचन ने मेरे दिल पर एक नया प्रभाव डाल दिया। उसका विचार करते-करते मैं बिलकुल थक गया, उसमें तन्मय हो गया। अब भी मैं उसीसे भरा हूं। ब्रह्मचर्य का जो अर्थ शास्त्रों में बताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्म से ही ब्रह्मचर्य का पालन किया हो। स्वप्न

में भी जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो, लेकिन मैं नहीं जानता था कि प्रजोत्पत्ति के हेतु जो संभोग करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है। कल यह बुलन्द बात मेरी समझ में आ गई। जो दंपत्ति गृहस्थाश्रम में रहते हुए केवल प्रजोत्पत्ति के हेतु ही परस्पर संयोग और एकांत करते हैं, वे ठीक ब्रह्मचारी ही हैं। आज हम जिसे विवाह कहते हैं, वह विवाह नहीं, भ्रष्टाचार है। यद्यपि मैं कहता था कि प्रजोत्पत्ति के लिए विवाह है, फिर भी यह मानता था कि इसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनों को प्रजोत्पत्ति से डर न मालूम हो, उसके परिणाम को टालनेका प्रयत्न न हो और भोग में दोनों की सहमति हो। मैं नहीं जानता कि उसका इससे भी अधिक कोई मतलब होगा; पर यह भी शुद्ध विवाह कब कहा जाय ? दंपत्ति प्रजोत्पत्ति तभी करें जब ज़रूरत हो, और जब उसकी ज़रूरत हो तभी एकांत भी करें। अर्थात् संभोग प्रजोत्पादन को कर्तव्य समझ कर तथा उसके लिए ही हो। इसके अतिरिक्त कभी एकांत न करें। यदि एक पुरुष इस प्रकार हेतुपूर्वक संभोग को छोड़कर स्थिर वीर्य हो तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी के बराबर है। सोचिए ऐसा एकांतवास जीवन में कितनी बार हो सकता है ? वीर्यवान् नीरोग स्त्री-पुरुषों के लिए तो जीवन में एक ही बार ऐसा अवसर हो सकता है। ऐसे व्यक्ति क्यों नैष्ठिक ब्रह्मचारी के समान न माने जायं ? जो बात मैं पहले थोड़ी-थोड़ी समझता था वह आज सूर्य की तरह स्पष्ट हो गई है। जो विवाहित हैं, इसे ध्यान में रखें। पहले भी मैंने यह बात बताई थी; पर उस समय मेरी इतनी श्रद्धा नहीं थी। उसे मैं अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझता हूं। पशु-जीवन में दूसरी बात हो सकती है; लेकिन मनुष्य के विवाहित जीवन का यह नियम होना चाहिए कि कोई भी पति-पत्नी बिना आवश्यकता के प्रजोत्पत्ति न करें और बिना प्रजोत्पादन के संभोग न करें।

हरिजन-सेवक,

३ अप्रेल, १९३७

: २३ :

धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते हैं :

"क़रीब ढाई साल हुए, हमारे शहर में एक घटना हो गई थी जो इस प्रकार है—

एक वैश्य गृहस्थकी १६ बरस की एक कुमारी कन्या थी । लड़की का मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्ष की थी, स्थानीय कालेज में पढ़ता था । यह तो मालूम नहीं कि कब से इन दोनों मामा और भांजी में प्रेम था; पर जब बात खुल गई तो उन दोनों ने आत्म-हत्या कर ली । लड़की तो फौरन ही ज़हर खाने के बाद मर गई ; पर लड़का दो रोज़ बाद अस्पताल में मरा । लड़की को गर्भ भी था । इस बात की शुरू-शुरू में तो खूब चर्चा चली । यहांतक कि अभागे मां-बाप को शहर में रहना भारी हो गया; पर वक्त के साथ-साथ यह बात भी दब गई और लोग भूलने लगे । कभी-कभी जब ऐसी मिलती-जुलती बात सुनने को मिलती है, तब पुरानी बातों की भी चर्चा होती है और यह वाक़या भी दोहरा दिया जाता है; पर उस ज़माने में; जब क़रीब-क़राब सभी लड़की को और लड़के को भी बुरा-भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज़ की थी कि ऐसी हालत में समाज को विवाह कर लेने की इज़ाज़त दे देनी चाहिए । इस बात से समाज में खूब बवण्डर उठा । आपकी इस पर क्या राय है ?"

मैंने स्थान का और लेखक का नाम नहीं दिया है; क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहर का नाम प्रकाशित किया जाय । तो भी इस प्रश्न पर ज़ाहिर चर्चा आवश्यक है । मेरी तो यह राय है कि ऐसे संबंध जिस समाज में त्याज्य माने जाते हैं, वहां विवाह का रूप

यकायक नहीं ले सकते, लेकिन किसी की स्वतंत्रता पर समाज या संबंधी आक्रमण क्यों करें ? ये मामा और भांजी सयानी उम्र के थे, अपना हित-अनहित समझ सकते थे। उन्हें पति-पत्नी के संबंध से रोकने का किसी को हक़ नहीं था। समाज भले ही इस संबंध को अस्वीकार करता; पर उन्हें आत्म-हत्या करने तक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकार के संबंध का प्रतिबंध सर्वमान्य नहीं है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमों में ऐसे संबंध त्याज्य नहीं माने जाते हैं—हिंदुओं में भी प्रत्येक वर्ण में त्याज्य नहीं हैं। उसी वर्ण में भिन्न प्रांत में भिन्न प्रथा है। दक्षिण में उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणों में ऐसे संबंध त्याज्य नहीं, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबंध रूढ़ियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबंध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णय से बने हैं।

लेकिन समाज के सब प्रतिबंधों को नवयुवक-वर्ग छिन्न-भिन्न करके फेंक दें, यह भी नहीं होना चाहिए। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाज में रूढ़ि का त्याग करवाने के लिए लोक-मत तैयार करने की आवश्यकता है। इस बीच में व्यक्तियों को धैर्य रखना चाहिए। धैर्य न रख सकें तो बहिष्कारादि को सहन करना चाहिए।

दूसरी ओर समाज का यह कर्तव्य है कि जो लोग समाज-बंधन तोड़ें, उनके साथ निर्दयता का बर्ताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिएं।

उक्त आत्म-हत्याओं का दोष, जिस समाज में वे हुईं, उसपर अवश्य है, ऐसा ऊपर के पत्र से सिद्ध होता है।

हरिजन-सेवक,
१ मई, १९३७

: २४ :

विवाह की मर्यादा

श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं :

'हरिजन सेवक' के इसी अंक में 'धर्म-संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमें आपने लिखा है कि उक्त प्रकार के अर्थात् मामा भांजी के संबंध रूढ़ियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबंध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णय से बने हैं।

मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबंध शायद संतानोत्पत्ति की दृष्टि से लगाये गये हैं। इस शास्त्र के ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि विजातीय तत्त्वों के मिश्रण से संतति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिंड कन्याओं का पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढ़ि है तो फिर सगी और चचेरी बहनों के संबंध पर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है ? यदि विवाह का हेतु संतानोत्पत्ति ही है और संतानोत्पादन के ही लिए दंपति का संयोग करना योग्य है तो फिर वर-कन्या के चुनाव के औचित्य की कसौटी सु-प्रजनन की क्षमता ही होनी चाहिए। क्या और कसौटियां गौण समझी जायं ? यदि हां, तो किस क्रम से, यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी राय में वह इस प्रकार होना चाहिए—

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।
(२) सुप्रजनन की क्षमता।
(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा।
(४) समाज और देश की सेवा।
(५) आध्यात्मिक उन्नति।

आपका इस संबंध में क्या मत है ?

हिंदू शास्त्रों में पुत्रोत्पत्ति पर ज़ोर दिया गया है। सधवाओं को आशीर्वाद दिया जाता है, "अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव।" आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दंपति संतान के लिये संयोग करे तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही संतान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की ? वंश-वर्धन की इच्छा के साथ ही 'पुत्र से नाम चलता है' यह इच्छा भी जुड़ी हुई मालूम होती है। केवल लड़की से इस इच्छा का कैसे समाधान हो सकता है ? बल्कि अभीतक समाज में 'लड़की के जन्म' का उतना स्वागत नहीं होता, जितना कि लड़के के जन्म का होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओं को सामाजिक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की—इस तरह दो संतति पैदा करने की छूट देना क्या अनुचित होगा ?

केवल संतानोत्पादन के लिए संयोग करने वाले दंपति ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिए—यह ठीक है—यह भी सही है कि संयत जीवन में एक ही बार संयोग से गर्भ रह जाता है। पहली बात की पुष्टि में एक कथा प्रचलित है—

वशिष्ठ की कुटिया के सामने एक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वशिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन पक जाता, तो पहले अरुंधती थाल परोसकर विश्वामित्र को खिलाने जाती, बाद को वशिष्ठ के घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्य-क्रम था। एक रोज़ बारिश हुई और नदी में बाढ़ आ गई। अरुंधती उस पार न जा सकी। उसने वशिष्ठ से इसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा 'जाओ, नदी से कहना, मैं सदा निराहारी विश्वामित्र को भोजन देने जा रही हूँ, मुझे रास्ता दे दो।' अरुंधती ने इसी प्रकार नदी से कहा—और उसने रास्ता दे दिया। तब अरुंधती के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज़ तो खाना खाते हैं, फिर निराहारी कैसे हुए ? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तब अरुंधती ने उनसे पुछा—'मैं वापस कैसे जाऊं, नदी में तो बाढ़ है ?' विश्वामित्र ने उलटकर पूछा—'तो आईं कैसे ?' उत्तर में अरुंधती ने वशिष्ठ का पूर्वोक्त नुसख़ा बतलाया। तब विश्वामित्र कहा—'अच्छा तुम नदी से कहना, सदा ब्रह्मचारी वशिष्ठ के यहां

लौट रही हूं। नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुंधती ने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। वशिष्ठ के सौ पुत्रों की तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वशिष्ठ से इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्र को सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूं? वशिष्ठ ने बताया—"जो केवल शरीर-रक्षण के लिए ही ईश्वरार्पण-बुद्धि से भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी है, और जो केवल स्व-धर्म पालन के लिए अनासक्तिपूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।"

परन्तु इसमें और मेरी समझ में तो शायद हिंदू-शास्त्र में भी केवल एक संतति—फिर वह कन्या हो या पुत्र—का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्री का नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूं, बहुतरे दंपतियों को समाधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किए एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है; परन्तु विवाह करने पर केवल संतानोत्पादन के लिए, और फिर भी प्रथम संतति के ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयम से रहना उससे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि 'काम' मनुष्य में स्वाभाविक प्रेरणा है। उसमें संयम सु-संस्कार का सूचक है। 'संतति के लिए संयोग' का नियम बना देने से सु-संस्कार या धर्म की तरफ मनुष्य की गति होती है, इसलिए यह वांछनीय है। संतानोत्पत्ति के ही लिए संयोग करने वाले संयमी का आदर करूंगा, कामेच्छा की तृप्ति करनेवाले को भोगी कहूंगा; पर उसे पतित नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग उसका तिरस्कार करें। इस विचार में मेरी कहीं ग़लती हो, तो बतावें।"

विवाह में जो मर्यादा बांधी गई है, उसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। रूढ़ि को ही, जो मर्यादा की वृद्धि के लिए बनाई जाती है, नैतिक कारण मानने में कोई आपत्ति नहीं है। संतान हित की दृष्टि से ही अगर भाई-बहन के संबंध का प्रतिबंध योग्य है, तो चचेरी बहन इत्यादि पर भी प्रतिबंध होना चाहिए; लेकिन भाई-बहन के संबंध या ऐसे संबंध के अतिरिक्त कोई प्रतिबंध धर्म में नहीं माना जाता। इसलिए रूढ़ि का जो

प्रतिबंध जिस समाज में हो, उसका अनुसरण उचित मालूम देता है। नैतिक विवाह के लिए जो पांच मर्यादाएं हरिभाऊजी ने रखी हैं, उनका क्रम बदलना चाहिए। पारस्परिक प्रेम और आकर्षण को अंतिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्तें उसके आश्रय में जाने से निरर्थक बन सकती हैं। इसलिए उक्त क्रम में आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम स्थान देना चाहिए। समाज और देश-सेवा को दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुंबिक और व्यावहारिक सुविधा को तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तों का अभाव हो, वहां पारस्परिक प्रेम को स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेम को स्थान दिया जाय तो वह सर्वोपरि बनकर दूसरों की अवगणना कर सकता है, और करता है, ऐसा आजकल के व्यवहार में देखने में आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओं में भी यह पाया जाता है। इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तों का पालन होते हुए भी जहां पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहां विवाह त्याज्य है। सुप्रजनन की क्षमता को शर्त न माना जाय; क्योंकि यही एक वस्तु विवाह की शर्त नहीं।

हिंदू-शास्त्र में पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस काल के लिए ठीक था, जब समाज में शस्त्र-युद्ध को अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुष-वर्ग की बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारण से एक से अधिक पत्नियों की भी इजाज़त थी और अधिक पुत्रों से अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टि से देखें तो एक ही संतति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्री के बीच भेद नहीं करता हूं; दोनों एक समान स्वागत के योग्य हैं।

वशिष्ठ, विश्वामित्र का दृष्टांत सार-रूप में अच्छा है। उसे शब्दशः सत्य अथवा शक्य मानने की आवश्यकता नहीं। उससे इतना ही सार निकालना काफ़ी है कि संतानोत्पत्ति के ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्य का विरोधी नहीं है। कामाग्नि की तृप्ति के कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। उसे निंद्य मानने की आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री-पुरुषों का मिलन भोग के ही कारण होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होते

रहते हैं, उन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवन को धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीव-मात्र की सेवा को आदर्श समझकर संसार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, उसके लिए ही ब्रह्मचर्य की मर्यादा का विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

हरिजन-सेवक,

१५ अप्रेल, १९३७
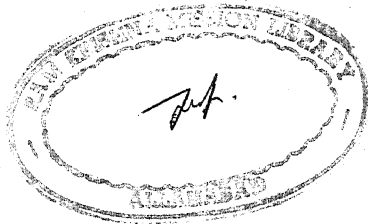
: २५ :

संतति-निरोध

प्रश्न—दरिद्र औरतों की संतान-वृद्धि रोकने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

उत्तर—हमारा तो कर्त्तव्य यही है कि उन्हें संयम का धर्म ही समझायें। कृत्रिम उपाय तो मर जाने जैसी बात है। और मैं नहीं समझता कि देहाती स्त्रियां उन्हें अपनायंगी। उनके बच्चों के लिए दूध प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—संतति-निरोध के लिए स्त्रियां तो संयम करना चाहें; पर पुरुष बलात्कार करें, तब क्या किया जाय ?

उत्तर—यह तो सच्चे स्त्री-धर्म का सवाल है। सतियों को मैं पूजता हूं; पर उन्हें कुएं में नहीं गिराना चाहता। स्त्री का सच्चा धर्म तो द्रोपदी ने बताया है। पति अगर गिरता है तो स्त्री न गिरे। स्त्री के संयम में बाधा डालना शुद्ध व्यभिचार है। यदि वह बलात्कार करने आवे तो उसे थप्पड़ मारकर भी सीधा करना उसका धर्म है। व्यभिचारी पति के लिए वह दरवाज़ा बंद कर दे। अधर्मी पति की पत्नी बनने से उसे इन्कार करना चाहिए। हमें स्त्रियों के अन्दर यह हिम्मत पैदा कर देनी चाहिए।

प्रश्न—मध्यम-वर्ग की स्त्रियों का संतति-निरोध के विषय में क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर—मध्यम-वर्ग की हो या बादशाही-वर्ग की हो, भोग भोगना हमारे हाथ में है; लेकिन परिणाम के बादशाह हम नहीं बन सकते। सिद्धि होगी या नहीं, यह शंका करना हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो सिर्फ़ यही होगा कि सत्य-धर्म सिखाएं। मध्यम-श्रेणी की स्त्रियां नये-नये

उपाय काम में लायं तो हमें मना करना चाहिए। संयम ही एक-मात्र उपाय हो सकता है।

प्रश्न—पति को उपदंश जैसा कठिन रोग हो तब स्त्री क्या करे ?

उत्तर—उस हालत में संतति-निरोध के उपायों से भी स्त्री का बचाव नहीं हो सकता। ऐसे पति को क्लीव ही समझ कर उसे दूसरी शादी कर लेनी चाहिए; इसके लिए स्त्रियां इतनी विद्या सीख लें, जिससे वे स्वावलंबी बन जायं।

गांधी-सेवा-संघ, द्वितीय अधिवेशन

१० अप्रेल, १९३७

: २६ :

काम-शास्त्र

गुजरात विद्यापीठ से हाल ही पारंगत-पदवी प्राप्त श्री मगनभाई देसाई के ७ अक्तूबर के पत्र से नीचे लिखा अंश यहां देता हूं—

"इस बार के 'हरिजन' में आपका लेख पढ़कर मेरे मन में विचार आया कि मैं भी एक प्रश्न चर्चा के लिए आपके सामने पेश करूं। इस विषय में आपने अबतक शायद ही कुछ कहा है। वह है बालकों को और खास करके विद्यार्थियों को काम-विज्ञान सिखाना। आप तो जानते ही हैं कि श्री.... गुजरात में इस विषय के बड़े हामी हैं। खुद मुझे तो इस बात में हमेशा अंदेशा ही रहा है; बल्कि मेरा तो मत है कि वे इस विषय के अधिकारी भी नहीं हैं। परिणाम से तो इस विषय की अनिष्टता ही प्रकट होती जाती है। वे तो शायद ऐसा ही मानते दिखाई देते हैं कि काम-विज्ञान के न जानने से ही शिक्षा और समाज में यह बिगाड़ हुआ है। नवीन मानस-शास्त्र भी बताता है कि यही सुप्त काम-भाव मानव-प्रवृत्ति का उद्‌भव-स्थान है। 'काम एषः कोध एष'—इसके आगे ये लोग जाते ही नहीं। हमारा.... एक दिन मुझसे कहता था—'तो आपको यह कहां मालूम है कि हरेक के अंदर काम नामक राक्षस रहता है? और इसके फलस्वरूप उसकी नीति-भावना जाग्रत होने के बदले उल्टी जड़ होती हुई दिखाई दी। इस तरह गुजरात में आजकल काम-विज्ञान के शिक्षण के नाम पर बहुत-कुछ हो रहा है। इस विषय पर पुस्तकें भी लिखी गई हैं। संस्करण-पर-संस्करण छपते हैं और हजारों की संख्या में ये बिकती हैं। कितने ही साप्ताहिक इस विषय के निकलते हैं और उनकी बिक्री भी खब होती है। खैर यह तो जैसा समाज होता है वैसा उसे

परोसने वाले मिल ही जाते हैं; किन्तु इससे सुधारक की दशा और अटपटी हो जाती है।

"इसलिए मैं चाहता हूं कि आप इसकी शिक्षा के विषय में सार्वजनिक रूप से चर्चा करें। शिक्षा के लिए काम-शास्त्र के शिक्षण की आवश्यकता है। कौन उसकी शिक्षा देने का और उसे पाने का अधिकारी है। मामूली भूगोल-गणित की तरह क्या सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए! उसकी क्या मर्यादा है और हमारे रगोरेशे में पैठे हुए इस शत्रु की मर्यादा इससे उल्टी दिशा में बांधना उचित है या इस तरह उसे शुभ नाम का गौरव देने की तरफ़! ऐसे अनेक तरह के सवाल मन में उठते हैं। आशा है कि आप इस विषय पर अवश्य रोशनी डालेंगे।"

इस पत्र को इतने दिन तक मैंने इसी आशा से रख छोड़ा था कि किसी दिन मैं इसमें उठाये गये प्रश्नों पर कुछ लिखूंगा। इस बीच मैं बारहवीं गुजराती-साहित्य-परिषद् का प्रमुख बनकर वापस सेगांव आ पहुंचा। विद्यापीठ में चार दिन जो रहा तो गुजराती भाई-बहनों के संपर्क में आने से पुरानी स्मृतियां ताज़ी हो आईं। उक्त पत्र के लेखक भी मिले। उन्होंने मुझसे पूछा भी, "मेरे उस पत्र का क्या हुआ?" "मेरे साथ-साथ वह सफ़र कर रहा है। मैं उसके बारे में ज़रूर लिखूंगा।" यह जवाब देकर मैंने मगन-भाई को कुछ तसल्ली दी थी।

अब उनके असली विषय पर आता हूं। क्या गुजरात में और क्या दूसरे प्रांतों में, सब जगह कामदेव मामूल के माफ़िक़ विजय प्राप्त कर रहे हैं। आजकल की उनकी विजय में एक विशेषता यह है कि उनके शरणागत नर-नारीगण उनको धर्म मानते दिखाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेड़ी को शृंगार समझकर पुलकित होता है, तब कहना चाहिए कि उसके सरदार की पूरी विजय हो गई। इस तरह कामदेव की विजय देखते हुए भी मुझे इतना विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अंत में डंक-कटे बिच्छू की तरह निस्तेज हो जानेवाली है। ऐसा होने के पहले पुरुषार्थ की तो आवश्यकता है ही। यहां मेरा यह आशय नहीं है कि अंत-में तो कामदेव की हार होने ही वाली है, इसलिए हम सुस्त या ग़ाफ़िल बन-कर बैठे रहें। काम पर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषों का परम कर्त्तव्य है।

उसपर विजय प्राप्त किये बिना स्वराज्य असंभव है। स्वराज्य बिना स्वराज अथवा राम-राज होगा ही कहां से? स्वराज-विहीन स्वराज खिलौने के आम की तरह समझना चाहिए। देखने में बड़ा सुन्दर, पर जब उसे खोला तो अंदर पोल-ही-पोल। काम पर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजन की, कौमी ऐक्य की, खादी की, गौ-माता की, ग्रामवासी की सेवा कभी नहीं कर सकता। इस सेवा के लिए बौद्धिक सामग्री बस होने की नहीं। आत्मबल के बिना ऐसी महान् सेवा असंभव है। और आत्मबल प्रभु के प्रसाद के बिना अशक्य है। कामी को प्रभु का प्रसाद मिला हो—ऐसा अबतक देखा नहीं गया।

तो मगनभाई ने यह सवाल पूछा है कि हमारे शिक्षा-क्रम में काम-शास्त्र के लिए स्थान है या नहीं, यदि है तो कितना? कामशास्त्र दो प्रकार का होता है—एक तो है काम पर विजय प्राप्त करानेवाला; उसके लिए तो शिक्षण-क्रम में स्थान होना ही चाहिए। दूसरा है, काम को उत्तेजन देने वाला शास्त्र। यह सर्वथा त्याज्य है। सब धर्मों ने काम को शत्रु माना है। क्रोध का नंबर दूसरा है। गीता तो कहती है—काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। यहां काम का व्यापक अर्थ लिया गया है। हमारे विषय-से संबंध रखनेवाला 'काम' शब्द प्रचलित अर्थ में इस्तैमाल किया गया है।

ऐसा होते हुए भी यह प्रश्न बाक़ी रहता है कि बालक-बालिकाओं को गुह्येन्द्रियों का और उनके व्यापार का ज्ञान दिया जाय या नहीं? मैं समझता हूं कि यह ज्ञान एक हद तक आवश्यक है। आज कितने ही बालक-बालिकाएं शुद्ध ज्ञान के अभाव में अशुद्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं और वे इंद्रियों का बहुत दुरुपयोग करते हुए पाये जाते हैं। आंख होते हुए भी हम नहीं देखते। इस तरह हम काम पर विजय नहीं पा सकते। बालक-बालिकाओं को उन इन्द्रियों के उपयोग का ज्ञान देने की आवश्यकता मैं मानता हूं। मेरे हाथ-नीचे जो बालक-बालिकाएं रही हैं उन्हें मैंने ऐसा ज्ञान देने का प्रयत्न भी किया है; परंतु यह शिक्षण और ही दृष्टि से दिया जाता है। इन इंद्रियों का ज्ञान देते हुए संयम की शिक्षा दी जाती है। काम पर कैसे विजय प्राप्त होती है यह सिखाया जाता है। यह शिक्षण देते हुए भी मनुष्य

और पशु के बीच का भेद बताना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य वह है जिसे हृदय और बुद्धि है। यह उसका धात्त्वर्थ है। हृदय को जाग्रत करने का अर्थ है—सारासार-विवेक सिखाना। यह सिखाते हुए काम पर विजय प्राप्त करना बताया जाता है।

तो अब इस शास्त्र की शिक्षा कौन दे? जिस प्रकार खगोल-शास्त्र की शिक्षा वही दे सकता है जो उसमें पारंगत हो; उसी तरह काम के जीतने का शास्त्र भी वही सिखा सकता है, जिसने काम पर विजय प्राप्त कर ली हो। उसकी भाषा में संस्कारिता होगी; बल होगा, जीवन होगा। जिस उच्चारण के पीछे अनुभव-ज्ञान नहीं है, वह जड़वत् है, वह किसी को स्पर्श नहीं कर सकता। जिसको अनुभव-ज्ञान है, उसका कथन उगे बिना नहीं रह सकता।

आजकल हमारा बाह्याचार, हमारा वाचन, हमारा विचार-क्षेत्र-सब काम की विजय सूचित कर रहे हैं। हमें उसके पाश से मुक्त होने का प्रयत्न करना है। यह काम अवश्य ही विकट है; मगर परवाह नहीं। अगर इने-गिने ही गुजराती हों, जिन्होंने शिक्षण-शास्त्र का अनुभव प्राप्त किया हो और जो काम पर विजय प्राप्त करने के धर्म को मानते हों, उनकी श्रद्धा यदि अचल रहेगी, वे जाग्रत रहेंगे और सतत प्रयत्न करते रहेंगे तो गुजरात के बालक-बालिकाएं शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेंगे और काम के जाल से मुक्ति प्राप्त करेंगे और जो उसमें न फंसे होंगे वे बच जायंगे।

हरिजन सेवक,
२८ नवंबर, १९३६

: २७ :

एक अस्वाभाविक पिता

एक नवयुवक ने मुझे एक पत्र भेजा है जिसका सार ही यहां दिया जा सकता है। वह निम्न प्रकार है :

'मैं एक विवाहित पुरुष हूं। मैं विदेश गया हुआ था। मेरा एक मित्र था, जिसपर मुझे और मेरे मां-बाप को पूरा विश्वास था। मेरी अनुपस्थिति में उसने मेरी पत्नी को फ़ुसला लिया, जिससे अब वह गर्भवती भी हो गई है। अब मेरे पिता इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मेरी पत्नी गर्भ को गिरा दे; नहीं तो वह कहते हैं, खानदान की बदनामी होगी। मुझे ऐसा लगता है कि यह तो ठीक नहीं होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्ताप के मारे मरी जा रही है। न तो उसे खाने की सुध है, न पीने की। जब देखो तब रोती रहती है। क्या आप कृपा करके बतलायेंगे कि इस हालत में मेरा क्या फ़र्ज़ है!"

यह पत्र मैंने बड़ी हिचकिचाहट के साथ प्रकाशित किया है। जैसा कि हरेक जानता है, समाज में ऐसी घटनाएं कभी-कदास ही नहीं होतीं। इसलिए संयम के साथ सार्वजनिक-रूप से इस प्रश्न की चर्चा करना मुझे असंगत नहीं मालूम पड़ता।

मुझे तो दिन के प्रकाश की तरह यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि गर्भ गिराना जुर्म होगा। इस बेचारी स्त्री ने जो असावधानी की है, वैसी असावधानी तो अनगिनत पति करते हैं; लेकिन उनको कभी कोई कुछ नहीं कहता। समाज उन्हें माफ़ ही नहीं करता; बल्कि उनकी निंदा भी नहीं करता। स्त्री तो अपनी शर्म को उस तरह छिपा भी नहीं सकती, जिस तरह कि पुरुष अपने पाप को सफलता के साथ छिपा सकता है।

यह स्त्री तो दया की पात्र है। पति का यह पवित्र कर्तव्य होगा कि वह अपने पिता की सलाह को न माने और बच्चे की परवरिश अपने भरसक पूरे लाड़-प्यार से करे : वह अपनी पत्नी के साथ रहना जारी रखे या नहीं, यह एक टेढ़ा सवाल है। परिस्थितियां ऐसी भी हो सकती हैं जिनके कारण उसे उससे अलग होना पड़े; लेकिन उस हालत में वह इस बात के लिए बाध्य होगा कि उसकी परवरिश तथा शिक्षा की व्यवस्था करे और शुद्ध मन से हो तो उसे ग्रहण करने में भी मुझे कोई ग़लती नहीं मालूम पड़ती। यही नहीं; बल्कि मैं तो ऐसी स्थिति की भी कल्पना कर सकता हूं जब पत्नी के अपनी ग़लती के लिए पूरी तरह पश्चात्ताप करके उससे मुक्त हो जाने पर पति का यह पुनीत कर्त्तव्य होगा कि वह उसको फिर से ग्रहण कर ले।

यंग इंडिया,

३ जनवरी, १९२९

: २८ :

एक परित्याग

सन १८६१ में विलायत से लौटने के बाद मैंने अपने परिवार के बच्चों को क़रीब-क़रीब अपनी निगरानी में ले लिया, और उनके—बालक-बालिकाओं के—कंधों पर हाथ रखकर उनके साथ घूमने की आदत डाल ली। ये मेरे भाइयों के बच्चे थे। उनके बड़े हो जाने पर भी यह आदत जारी रही। ज्यों-ज्यों परिवार बढ़ता गया, त्यों-त्यों इस आदत की मात्रा इतनी बढ़ी कि इसकी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा।

जहांतक मुझे याद है, मुझे कभी यह पता नहीं चला कि मैं इसमें कोई भूल कर रहा हूं। कुछ वर्ष हुए कि साबरमती में एक आश्रमवासी ने मुझसे कहा था कि 'आज जब बड़ी-बड़ी उम्र की लड़कियों और स्त्रियों के कंधों पर हाथ रखकर चलते हैं, तब इससे लोक-स्वीकृत सभ्यता के विचार को चोट पहुंचती मालूम होती है।' किंतु आश्रमवासियों के साथ चर्चा होने के बाद यह चीज़ जारी ही रही। अभी हाल में मेरे दो साथी जब वर्धा आये तब उन्होंने कहा कि 'आपकी यह आदत संभव है कि दूसरों के लिए एक उदाहरण बन जाय, इसलिए आपको यह बंद कर देनी चाहिए।' उनकी यह दलील मुझे जंची नहीं। तो भी उन मित्रों की चेतावनी की मैं अवहेलना नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने पांच आश्रमवासियों से इसकी जांच करने और इसके संबंध में सलाह देने के लिए कहा। इसपर विचार हो ही रहा था कि इस बीच में एक निर्णयात्मक घटना घटी। मुझे किसी ने बताया कि यूनिवर्सिटी का एक तेज़ विद्यार्थी अकेले में एक लड़की के साथ, जो उसके प्रभाव में थी, सभी तरह की आज़ादी से काम लेता था, और दलील यह दिया करता था कि वह उस लड़की को सगी

बहन की तरह प्यार करता है, और इसीसे कुछ चेष्टाओं का प्रदर्शन किये बिना उससे रहा नहीं जाता। कोई उसपर अपवित्रता का ज़रा भी आरोपण करता तो वह नाराज़ हो जाता। वह नवयुवक क्या-क्या करता था उन सब बातों को अगर यहां लिखूं तो पाठक बिना किसी हिचकिचाहट के यह कह देंगे कि जिस आज़ादी से वह काम लेता था, उसमें अवश्य ही गंदी भावना थी। मैंने और दूसरे जिन लोगों ने इस संबंध का पत्र-व्यवहार जब पढ़ा तब हम इस नतीजे पर पहुंचे कि या तो वह युवक विद्यार्थी परले सिरे का बना हुआ आदमी है, या फिर खुद अपने-आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो, इस अनुसंधान ने मुझे विचार में डाल दिया। मुझे अपने उन दोनों साथियों की दी हुई चेतावनी याद आई और मैंने अपने दिल से पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि वह नवयुवक अपने बचाव में मेरे व्यवहार की दलील दे रहा है तो मुझे कैसा लगे ? मैं यहां यह बतला दूं कि यह लड़की, जो उस नवयुवक की चेष्टाओं का शिकार बन गई है, यद्यपि वह उसे बिलकुल पवित्र और भाई के समान मानती है, तो भी वह उसकी उन चेष्टाओं को पसंद नहीं करती; बल्कि यह आपत्ति भी करती है; पर उस बेचारी में इतनी ताक़त नहीं कि वह उस युवक की आपत्तिजनक चेष्टाओं को रोक सके। इस घटना के कारण मेरे मन में जो आत्म-परीक्षण मंथन कर रहा था, उसका यह परिणाम हुआ कि उस पत्र-व्यवहार को पढ़ने के दो-तीन दिन के अंदर मैंने अपनी उपर्युक्त प्रथा का परित्याग कर दिया, और गत १२वीं तारीख को मैंने वर्धा के आश्रमवासियों को अपना यह निश्चय सुना दिया। यह बात नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे कष्ट न हुआ हो। इस व्यवहार के बीच या उसके कारण कभी कोई अपवित्र विचार मेरे मन में नहीं आया। मेरा आचरण कभी छिपा हुआ नहीं रहा है। मैं मानता हूं कि मेरा आचरण पिता के जैसा रहा है, और जिन अनेक लड़कियों का मैं मार्ग-दर्शक और अभिभावक रहा हूं, उन्होंने अपने मन की बातें इतने विश्वास के साथ मेरे सामने रखीं कि जितने विश्वास के साथ वे शायद और किसी के सामने न रखतीं। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्य में मेरा विश्वास नहीं, जिसमें स्त्री-पुरुष का परस्पर स्पर्श बचाने के लिए एक रक्षा की दीवार

बनाने की ज़रूरत पड़े, और जो ब्रह्मचर्य ज़रा से प्रलोभन के आगे भंग हो जाय तो भी जो स्वतंत्रता मैंने ले रखी है, उसके खतरों से मैं अनजान नहीं हूं।

इसलिए जिस अनुसंधान का मैंने ऊपर ज़िक्र किया है; उसने मुझे अपनी यह आदत छोड़ देने के लिए सचेत कर दिया, फिर मेरा कंधों पर हाथ रखकर चलने का व्यवहार चाहे जितना पवित्र रहा हो। मेरे हरेक आचरण को हज़ारों स्त्री-पुरुष खूब सूक्ष्मता से देखते हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूं, उसमें सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नहीं करने चाहिएं जिनका बचाव मुझे दलीलों के सहारे करना पड़े। मेरे उदाहरण का कभी यह अर्थ नहीं था कि उसका चाहे जो अनुसरण करने लग जाय। इस नवयुवक का मामला बतौर एक चेतावनी के मेरे सामने आया और उससे मैं आगाह हो गया। मैंने इस आशा से यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन लोगों को सही रास्ता सुझा देगा, जिन्होंने या तो मेरे उदाहरण से प्रभावित होकर ग़लती की है या यों ही। निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है। क्षणक उत्तेजना के पीछे, जिसे ग़लती से 'आनंद' कहते हैं। इस निधि को यों ही बरबाद नहीं कर देना चाहिए। और इस चित्र में चित्रित लड़की के समान कमज़ोर मन वाली लडकियों में इतना बल तो होना ही चाहिए कि वे उन बदमाश या अपने कामों से अनजान नवयुवकों की हरकतों का—फिर वे उन्हें चाहे जितना निर्दोष जतलावें—साहस के साथ सामना कर सकें।

हरिजन-सेवक,
२७ सितम्बर, १९३५

: २९ :

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कांग्रेस नेता ने बातचीत के सिलसिले में उस दिन मुझसे कहा--"यह क्या बात है कि कांग्रेस अब नैतिकता की दृष्टि से वैसी नहीं रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ तक थी ? तब से तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गई है। अब तो इसके नव्वे फ़ीसदी सदस्य कांग्रेस के अनुशासन का पालन नहीं करते। क्या आप इस हालत को सुधारने के लिए कुछ नहीं कर सकते।"

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कहकर अपनी ज़िम्मेदारी से हट नहीं सकता कि अब मैं कांग्रेस में नहीं हूं। मैं तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करने के लिए ही इससे बाहर हुआ हूं। कांग्रेस की नीति पर अब भी मैं अपना प्रभाव डाल रहा हूं, यह मैं जानता हूं। और १९२० में कांग्रेस का जो विधान बना था, उसे बनानेवाले की हैसियत से उस गिरावट के लिए मुझे अपने को ज़िम्मेदार मानना ही चाहिए, जिससे कि बचा जा सकता है।

कांग्रेस ने आरंभिक कठिनाइयों के बीच सन् १९२० में काम शुरू किया था। सत्य और अहिंसा पर बतौर ध्येय के बहुत कम लोग विश्वास करते थे। अधिकांश सदस्यों ने इन्हें नीति के तौर पर ही स्वीकार किया। वह अनिवार्य था। मैंने आशा की थी कि नई नीति से कांग्रेस को काम करते हुए देखकर उनमें से अनेक इन्हें अपने ध्येय के रूप में स्वीकार कर लेंगे; लेकिन ऐसा कुछ ही लोगों ने किया, बहुतों ने नहीं। शुरूआत में तो सबसे बड़े नेताओं में भारी परिवर्त्तन देखने में आया। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबंधुदास के जो पत्र 'यंग इंडिया' में उद्धृत किये गये थे,

उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। संयम, सादगी और अपने आपको कुर्बान कर देने के जीवन में उन्हें एक नये आनंद और एक नई आशा का अनुभव हुआ था। अलीबंधु तो क़रीब-क़रीब फ़क़ीर ही बन गये थे। जगह-जगह दौरा करते हुए, इन भाइयों में होनेवाली तब्दीली को मैं आनंद के साथ देखता था। और जो बात इन चार नेताओं के विषय में सच है, वही और भी ऐसे बहुतों के बारे में कही जा सकती है, जिनके कि मैं नाम गिना सकता हूं। इन नेताओं के उत्साह का लोगों पर भी असर पड़ा।

लेकिन यह प्रत्यक्ष परिवर्त्तन 'एक साल में स्वराज्य' के आकर्षण की वजह से था। इसकी पूर्ति के लिए मैंने जो शर्तें लगाई थीं, उनपर किसी ने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुलमजीद साहब ने तो यहां तक कह डाला कि सत्याग्रह सेना के, जैसी कि कांग्रेस उस समय बन गई थी और अभी भी है, (यदि कांग्रेसवादी सत्याग्रह के अर्थ को महसूस करें) सेनापति की हैसियत से मुझे इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए था कि मैं जो शर्तें लगा रहा हूं, वे ऐसी हैं जो पूरी हो जायंगी। शायद उनका कहना ठीक ही था। सिर्फ वह ज्ञान-चक्षु मेरे पास नहीं था। सामूहिक रूप में और राजनीतिक उद्देश्य से अहिंसा का उपयोग खुद मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं गर्व-पूर्वक कोई दावा नहीं कर सकता था। मेरी शर्तों का यह उद्देश्य था कि जिससे लोगों की शक्ति का अंदाजा लग सके। वे पूरी हो भी सकती थीं और नहीं भी हो सकती थीं। ग़लतियों, या ग़लत अंदाज़ों की तो सदा ही संभावना थी। जो भी हो, जब स्वराज्य की लड़ाई लंबी हो गई और खिलाफ़त के सवाल में जान न रही तो लोगों का उत्साह मंद पड़ने लगा। अहिंसा में नीति के तौर पर भी विश्वास ढ़ीला पड़ने लगा और सत्य का प्रवेश हो गया। जिन लोगों का इन दोनों गुणों में या खद्दर की शर्त में कोई विश्वास नहीं था, वे इसमें घुस आये और बहुतों ने तो खुले आम भी कांग्रस-विधान की अवहेलना करनी शुरू कर दी।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गई। वर्किंग-कमेटी कांग्रेस को इस बुराई से मुक्त करने का कुछ प्रयत्न करती रही है; लेकिन दृढ़तापूर्वक नहीं, और न वह कांग्रेस के सदस्यों की संख्या कम हो जाने के खतरे को उठाने के लिए तैयार हो सकी है। मैं खुद तो संख्या के बजाय गुण में ही ज्यादा विश्वास

करता हूं।

लेकिन अहिंसा की योजना में जबर्दस्ती का कोई काम नहीं है। उसमें तो इसी बात पर निर्भर रहना पड़ता है कि लोगों की बुद्धि और हृदय तक—उसमें भी बुद्धि की अपेक्षा हृदय पर ही ज्यादा—पहुंचने की क्षमता प्राप्त की जाय।

इसका अभिप्राय हुआ कि सत्याग्रह-सेनापति के शब्द में ताक़त होनी चाहिए—वह ताक़त नहीं जो असीमित अस्त्र-शस्त्रों से प्राप्त होती है; बल्कि वह जो जीवन की शुद्धता, दृढ़ जागरूकता और संतत आचरण से प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्य का पालन किये बग़ैर असंभव है। इसका इतना संपूर्ण होना आवश्यक है, जितना कि मनुष्य के लिए संभव है। ब्रह्मचर्य का अर्थ यहां खाली दैहिक आत्मसंयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्य का भंग है और यही हाल क्रोध का है। सारी शक्ति उस वीर्य-शक्ति की रक्षा और ऊर्ध्वगति से प्राप्त होती है, जिससे कि जीवन का निर्माण होता है। अगर इस वीर्य-शक्ति को नष्ट होने देने के बजाय, संचय किया जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजन-शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है। बुरे या अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित, अवांछनीय विचारों से भी इस शक्ति का बराबर और अज्ञात रूप से क्षय होता रहता है और चूंकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओं का मूल होता है इसलिए वे भी इसीका अनुसरण करती हैं। इसीलिए पूर्णतः नियंत्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकार की शक्ति है। और स्वतः क्रियाशील बन सकता है। मूकरूप में की जानेवाली हार्दिक प्रार्थना का मुझे तो यही अर्थ मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य ईश्वर की मूर्ति का उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्र के अंदर किसी बात की इच्छा भर करने की देर है! जैसा वह चाहता है वैसा ही वह बन जाता है। जिस तरह चूने वाले नल में भाप रखने से कोई शक्ति पैदा नहीं होती, उसी प्रकार जो अपनी शक्ति का किसी भी रूप में क्षय होने देता है, उसमें इस शक्ति का होना असंभव है प्रजोत्पत्ति के निश्चित उद्देश्य से न किया जाने वाला काम-संबंध इस शक्ति-क्षय का एक बहुत बड़ा नमूना है, इसलिए उसकी ख़ासतौर से

निंदा की गई है, वह ठीक ही है, लेकिन जिसे अहिंसात्मक कार्य के लिए मनुष्य-जाति के विशाल समूहों का संगठित करना है, उसे तो, इंद्रियों के जिस पूर्ण निग्रह का मैंने ऊपर वर्णन किया है, उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना ही चाहिए।

ईश्वर की असीम कृपा के बग़ैर यह संपूर्ण इंद्रिय-निग्रह संभव नहीं है। गीता के दूसरे अध्याय में एक श्लोक है—

> "विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः,
> रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।"

अर्थात्—जबतक उपवास किये जाते हैं, तबतक इंद्रियां विषयों की ओर नहीं दौड़तीं, पर अकेले उपवास से रस सूख नहीं जाते। उपवास छोड़ते ही वे और भी बढ़ सकते हैं। इसको वश में करने के लिए तो ईश्वर का प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन यांत्रिक या अस्थायी नहीं है। एक बार प्राप्त हो जाने के बाद यह कभी नष्ट नहीं होता। उस हालत में वीर्य शक्ति इस तरह सुरक्षित रहती है कि अगणित रास्तों में से किसी में होकर उसके निकलने की संभावना ही नहीं रहती।

कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह प्राप्त किया जा सकता हो तो कंदराओं में रहनेवाले ही कर सकते होंगे। ब्रह्मचारी को तो, कहते हैं, स्त्रियों का स्पर्श तो क्या, उसका दर्शन भी कभी नहीं करना चाहिए। निस्संदेह किसी ब्रह्मचारी को काम-वासना से किसी स्त्री को न तो छूना चाहिए; न देखना चाहिए और न उसके विषय में कुछ कहना या सोचना चाहिए; लेकिन ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तकों में हमें यह जो वर्णन मिलता है उसमें इसके महत्वपूर्ण अव्यय 'कामवासना-पूर्वक' का उल्लेख नहीं मिलता। इस छूट की वजह यह मालूम पड़ती है कि ऐसे मामलों में मनुष्य निष्पक्षरूप से निर्णय नहीं कर सकता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कब तो उसपर ऐसे संपर्क का असर पड़ा और कब नहीं। काम-विकार अक्सर अनजाने ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में आज़ादी से सबके साथ हिलने-मिलने पर ब्रह्मचर्य का पालन यद्यपि कठिन है, लेकिन अगर संसार से नाता तोड़ लेने पर ही यह प्राप्त हो

सकता हो तो उसका कोई विशेष मूल्य ही नहीं है ।

जैसे भी हो मैंने तो तीस वर्ष से भी अधिक समय से प्रवृत्तियों के बीच रहते हुए ब्रह्मचर्य का खासी सफलता के साथ पालन किया है । ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने का निश्चय कर लेने के बाद, अपनी पत्नी के साथ व्यवहार को छोड़कर मेरे बाह्य आचरण में कोई अंतर नहीं पड़ा । दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों के बीच मुझे जो काम करना पड़ा, उसमें मैं स्त्रियों के साथ आज़ादी के साथ हिलता-मिलता था । ट्रांसवाल और नेटाल में शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री हो जिसे मैं न जानता होऊं । मेरे लिए तो इतनी सारी स्त्रियां बहनें और बेटियां ही थीं । मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नहीं है । मैंने तो अपने तथा उन लोगों के लिए जो कि मेरे कहने पर इस प्रयोग में शामिल हुए हैं, अपने ही नियम बनाये हैं और अगर मैंने इसके लिए निर्दिष्ट निषेधों का अनुसरण नहीं किया है, तो धार्मिक साहित्य में स्त्रियों को जो सारी बुराई और प्रलोभन का द्वार बताया गया है, उसे मैं इतना भी नहीं मानता । मैं तो ऐसा मानता हूँ कि मुझमें जो भी अच्छाई हो वह सब मेरी मां की बदौलत है । इसलिए स्त्रियों को मैंने कभी इस तरह नहीं देखा कि क़ामवासना की तृप्ति के लिए ही वे बनाई गई हैं, बल्कि हमेशा उसी श्रद्धा के साथ देखा है जोकि मैं अपनी माता के प्रति रखता हूं । पुरुष ही प्रलोभन देनेवाला और आक्रमण करनेवाला है । स्त्री के स्पर्श से वह अपवित्र नहीं होता; बल्कि अक्सर वह खुद ही उसका स्पर्श करने लायक पवित्र नहीं होता । लेकिन हाल में मेरे मन में संदेह ज़रूर उठा है कि स्त्री या पुरुष के संपर्क में आने के लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी को किस तरह की मर्यादाओं का पालन करना चाहिए । मैंने जो मर्यादाएं रखी हैं वे मुझे पर्याप्त नहीं मालूम पड़ती; लेकिन वे क्या होनी चाहिएं, यह मैं नहीं जानता । मैं तो प्रयोग कर रहा हूं । इस बात का मैंने कभी दावा नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषा के अनुसार पूरा ब्रह्मचारी बन गया हूं । अब भी मैं अपने विचारों पर उतना नियंत्रण नहीं रख सकता हूं जितने नियंत्रण को अपनी अहिंसा की शोधों के लिए मुझे आवश्यकता है; लेकिन अगर मेरी अहिंसा ऐसी हो जिसका दूसरों

पर असर पड़े और वह उनमें फैले, तो मुझे अपने विचारों पर और अधिक नियंत्रण करना ही चाहिए। इस लेख के आरंभिक वाक्यों में नेतृत्व की जिस प्रत्यक्ष असफलता का उल्लेख किया गया है, उसका कारण शायद कहीं-न-कहीं किसी कमी का रह जाना ही है।

अहिंसा में मेरा विश्वास हमेशा की तरह दृढ़ है। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देश की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए; बल्कि अगर ठीक तरह से इसका पालन किया जाय तो यह उस खून-खराबी को भी रोक सकती है, जो हिंदुस्तान के बाहर हो रही है और सारे पश्चिमी संसार में जिसके व्याप्त हो जाने का अंदेशा है।

मेरी आकांक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वर ने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है, जो अहिंसा के पथ पर सारी दुनिया की रहनुमाई करूं; लेकिन मैंने यह कल्पना ज़रूर की है कि हिंदुस्तान की अनेक ख़राबियों के निवारणार्थ अहिंसा का प्रयोग करने के लिए उसने मुझे अपना औज़ार बनाया है। इस दिशा में अभीतक जो प्रगति हो चुकी है, वह महान् है, लेकिन अभी बहुत-कुछ करना बाक़ी है। इतने पर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए आमतौर पर कांग्रेसवादियों की जो सहानुभूति आवश्यक है उसे उकसाने की शक्ति मुझमें नहीं रही है। जो अपने औज़ारों को ही बुरा बतलाता रहता है वह कोई अच्छा बढ़ई नहीं है। यह तो 'नाच न आवे, आंगन टेढ़ा' की मसल होगी। इसी तरह बिगड़े हुए कामों के लिए अपने आदमियों को दोष देनेवाला सेनापति भी अच्छा नहीं कहा जा सकता; पर मैं यह जानता हूं कि मैं बुरा सेनापति नहीं हूं। अपनी मर्यादाओं को जानने की जितनी बुद्धि मुझमें मौजूद है अगर कभी उसका मेरे अंदर से दिवाला निकल जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मैं उसकी स्पष्ट घोषणा कर दूंगा।

उसकी कृपा से मैं कोई आधी सदी से जो काम कर रहा हूं अगर उसके लिए मेरी और ज़रूरत न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा; लेकिन मेरा खयाल है कि मेरे करने को अभी काफ़ी काम है। जो अंधकार मेरे ऊपर छा गया मालूम पड़ता है, वह नष्ट हो जायगा, और स्पष्टतया अहिंसात्मक

साधनों से भारत अपने लक्ष्य तक पहुंच जायगा—फिर इसके लिए चाहे डांडी-कूच से भी ज्यादा उग्र लड़ाई लड़नी पड़े या उसके बग़ैर ही ऐसा हो जाय। मैं ईश्वर से उस प्रकाश की याचना कर रहा हूं जो अंधकार का नाश कर देगा। अहिंसा जितनी जीवित श्रद्धा हो उन्हें इसमें मेरा साथ देना चाहिए।

हरिजन-सेवक,

२३ जुलाई, १९३८

: ३० :

उसकी कृपा बिना कुछ नहीं

डॉक्टरों और अपने-आप जेलर बननेवाले सरदार वल्लभभाई तथा जमनालालजी की कृपा से मैं फिर पाठकों के संपर्क में आने के काबिल हो गया हूं, हालांकि है यह परीक्षण के तौर पर और एक निश्चित सीमा तक ही। इन लोगों ने मेरी स्वतंत्रता पर यह बंधन लगा दिया है और मैंने उसे स्वीकार कर लिया है कि फिलहाल मैं 'हरिजन' में उससे अधिक किसी हालत में नहीं लिखूंगा जोकि मुझे बहुत ज़रूरी मालूम पड़े; और वह भी इतना ही कि जिसके लिखने में प्रति सप्ताह कुछ घंटे अधिक समय न लगे। सिवा उनके कि जिनके साथ मैंने अभी से लिखा-पढ़ी शुरू कर दी है, और किसी की निजी समस्याओं या घरेलू कठिनाइयों के बारे में मैं निजी पत्र-व्यवहार नहीं करूंगा; और न तो मैं किसी सार्वजनिक कार्यक्रम को स्वीकार करूंगा, न किसी सार्वजनिक सभा में भाषण दूंगा या उपस्थित ही होऊंगा। सोने, दिलबहलाव, मेहनत और भोजन के बारे में भी निश्चित रूप से निर्देश कर दिये गये हैं, लेकिन उनके वर्णन की कोई ज़रूरत नहीं; क्योंकि उनसे पाठकों का कोई संबंध नहीं है। मुझे आशा है कि इन हिदायतों का पालन करने में 'हरिजन' के पाठक तथा संवाद-दाता लोग मेरे और महादेवभाई के साथ, जिनके जिम्मे सब पत्र-व्यवहार को भुगताने का काम होगा, पूरा सहयोग करेंगे।

मेरी बीमारी के मूल और उसके लिए किये जाने वाले उपायों की कुछ बात पाठकों के लिए अवश्य रुचिकर होगी। जहांतक मैंने अपने डाक्टर को समझा है, मेरे शरीर का बहुत सावधानी और सिरदर्दी के साथ निरीक्षण करने पर भी उन्हें मेरे शारीरिक अवयवों में कोई खराबी नहीं मिली।

उनकी राय में बहुत संभवतः 'प्रोटीन' और 'कारबोहाइड्रेट्स' की कमी, जो कि शक्कर और निशास्ते के द्वारा प्राप्त होती है, और बहुत दिनों से अपने रोज़मर्रा के सार्वजनिक काम-काज के अलावा लगातार लंबे-लंबे समय तक परेशान कर देनेवाली विविध निजी समस्याओं में उलझे रहने से यह बीमारी हुई थी। जहांतक मुझे याद पड़ता है पिछले बारह महीने या इससे भी अधिक समय से मैं इस बात को बराबर कहता आ रहा था कि लगातार बढ़ते जानेवाले काम की तादाद में अगर कमी न हुई तो मेरा बीमार पड़ जाना निश्चित है। इसलिए जब बीमारी आई तो मेरे लिए वह नई बात नहीं थी। और बहुत संभव है कि दुनिया में इसका इतना ढिंढोरा ही न पिटता, अगर एक मित्र की ज़रूरत से ज्यादा चिंता सामने न आती, जिन्होंने कि मेरे स्वास्थ्य को गिरता देखकर जमनालालजी को सनसनीदार रुक्का भेज दिया। बस, जमनालालजी ने यह ख़बर पाते ही उन सब होशियार डॉक्टरों को बुला लिया जोकि वर्धा में मिल सकते थे और विशेष सहायता के लिए नागपुर व बम्बई भी ख़बर भेज दी।

जिस दिन मैं बीमार पड़ा, उस दिन सवेरे ही मुझे उसकी चेतावनी मिल गई थी। जैसे ही सोकर उठा, मुझे अपनी गर्दन के पास एक खास तरह का दर्द मालूम पड़ा; लेकिन मैंने उसपर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और किसी से कुछ नहीं कहा। दिन-भर मैं अपना काम करता रहा। शाम की हवाख़ोरी के वक्त जब मैं एक मित्र के साथ बातें कर रहा था तो मुझे बहुत थकावट मालूम पड़ने लगी और मैं बहुत गंभीर हो गया। मेरे स्नायु इससे पहले पखवाड़े में ऐसी समस्याओं के सोच-विचार में पहले ही काफ़ी ढीले पड़ चुके थे, जोकि मेरे लिए मानों स्वराज्य के सर्वप्रधान प्रश्न की ही तरह महत्वपूर्ण थीं।

मेरी बीमारी को अगर इतना तूल न दिया गया होता तो भी जो निश्चित चेतावनी प्रकृति मुझे दे रही थी, उसपर मुझे ध्यान देना पड़ता और मैंने अपने को थोड़ा आराम देकर उस कठिनाई को हल करने की कोशिश की होती; लेकिन जो कुछ हो गया उसपर नज़र डालने से मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। डॉक्टरों ने जो असाधारण सावधानी रखने की सलाह दी और उन्हींके समान असाधारण रूप से

उक्त दोनो जेलरों ने जो देख-भाल रखी उसके कारण मजबूरन मुझे आराम करना पड़ा, जो वैसे मैं कभी न करता, और उससे मुझे आत्म-निरीक्षण का काफी समय मिल गया। इसलिए उससे मुझे स्वास्थ्य का लाभ ही नहीं हुआ; बल्कि आत्म-निरीक्षण से मुझे यह भी मालूम हुआ कि गीता का जो अर्थ मैं समझा हूं उसका पालन करने में मैं कितनी ग़लती कर रहा हूं। मुझे पता लगा कि जो विविध समस्याएं हमारे सामने उपस्थित हैं, उनकी काफ़ी गहराई में मैं नहीं पहुंचा हूं। यह स्पष्ट है कि उनमें से अनेक ने मेरे हृदय पर असर डाला है और मैंने उन्हें, अपनी भावुकता को प्रेरित करके, अपने स्नायुओं पर ज़ोर डालने दिया है। दूसरे शब्दों में कहूं तो गीता के भक्त को उनके प्रति जैसा अनासक्त रहना चाहिए वैसा मेरा मन या शरीर नहीं रहा है। सचमुच मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति प्रकृति के आदेश का पूर्णतः अनुसरण करता है उसके मन में बुढ़ापे का भाव कभी आना ही नहीं चाहिए। ऐसा व्यक्ति तो अपने को सदा तरो-ताज़ा और नौजवान ही महसूस करेगा और जब उसके मरने का समय आयगा तो उसी तरह मरेगा जैसे किसी मज़बूत वृक्ष के पत्ते गिरते हों। भीष्म पितामह ने मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए भी युधिष्ठिर को जो उपदेश दिया, मेरी समझ में उसका यही अर्थ है। डॉक्टर लोग मुझे यह चेतावनी देते कभी नहीं थकते थे कि हमारे आस-पास जो घटनाएं हो रही हैं, उनसे मुझे उत्तेजित हर्गिज़ नहीं होना चाहिए। कोई दुःखद या उत्तेजित घटना अथवा समाचार मेरे सामने न आए, इसकी भी ख़ासतौर पर सावधानी रखी गई। यद्यपि मेरा ख़याल है कि मैं गीता का उतना बुरा अनुयायी नहीं हूं, जैसा कि इस सावधानी की कार्रवाई से मालूम पड़ता है; लेकिन इसमें संदेह नहीं कि उनकी हिदायतों में सार अवश्य था; क्योंकि मगनवाड़ी से महिला-श्रम जाने की जमनालालजी की बात मैंने कितनी अनिच्छा से क़बूल की, यह मुझे मालूम है। जो भी हो, उन्हें यह विश्वास नहीं रहा कि अनासक्त-रूप से मैं कोई काम कर सकता हूं। मेरा बीमार पड़ जाना उनके लिए इस बात का बड़ा भारी प्रमाण था कि अनासक्ति की मेरी जो ख्याति है, वह थोथी है, और इसमें मुझे अपना दोष स्वीकार करना ही पड़ेगा।

लेकिन अभी तो इससे भी अधिक बुरा होने को बाक़ी था। १८९९ से

मैं जान-बूझ कर और निश्चय के साथ, बराबर ब्रह्मचर्य का पालन करने की कोशिश करता रहा हूं। मेरी व्याख्या के अनुसार, इसमें न केवल शरीर की, बल्कि मन और वचन की शुद्धता भी शामिल है। और सिवा उस अपवाद के जिसे कि मानसिक स्खलन कहना चाहिए, अपने ३६ वर्ष से अधिक समय के सतत एवं जागरूक प्रयत्न के बीच, मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी भी मेरे मन में इस संबध में ऐसी बेचैनी पैदा हुई हो, जैसी कि इस बीमारी के समय मुझे महसूस हुई। यहांतक कि मुझे अपने से निराशा होने लगी; लेकिन जैसे ही मेरे मन में ऐसी भावना उठी, मैंने अपने परिचारकों और डाक्टरों को उससे अवगत कर दिया; लेकिन वे मेरी कोई मदद नहीं कर सके। मैंने उनसे आशा भी नहीं की थी। अलबत्ता इस अनुभव के बाद मैंने उस आराम में ढिलाई कर दी, जोकि मुझपर लादा गया था और अपने इस बुरे अनुभव को स्वीकार कर लेने से मुझे बड़ी मदद मिली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे ऊपर बड़ा भारी बोझ हट गया और कोई हानि हो सकने से पहले ही मैं संभल गया; लेकिन गीता का उपदेश तो स्पष्ट और निश्चित है; जिसका मन एक बार ईश्वर में लग जाय वह कोई पाप नहीं कर सकता। मैं उससे कितना दूर हूं, यह तो वही जानता हैं। ईश्वर को धन्यवाद है कि अपने महात्मापन की प्रसिद्धि से मैं कभी धोखे में नहीं पड़ा हूं; लेकिन इस जबर्दस्ती के विश्राम ने तो मुझे इतना विनम्र बना दिया है, जितना मैं पहले कभी नहीं था। इससे अपनी मर्यादाएं और अपूर्णताएं भली-भांति मेरे सामने आ गई हैं; लेकिन उनके लिए मैं उतना लज्जित नहीं हूं जितना कि सर्वसाधारण से उनको छिपाने में होता। गीता के संदेश में सदा की तरह आज मेरा वैसा ही विश्वास है। उस विश्वास को ऐसे सुंदर रूप में परिणत करने के लिए कि जिससे गिरावट का अनुभव ही न हो, लगातार अथक प्रयत्न की आवश्यकता है; लेकिन उसी गीता में साथ-साथ असंदिग्ध रूप से यह भी कहा हुआ है कि ईश्वरीय अनुग्रह के बिना वह स्थिति ही प्राप्त नहीं हो सकती। अगर विधाता ने इतनी गुंजाइश न रखी होती तो हमारे हाथ-पैर ही फूल गये होते और हम अकर्मण्य हो गये होते।

(ह० से, २९-२-३६)

: ३१ :

विद्यार्थियों के लिए लज्जाजनक

पंजाब के एक कालेज की लड़की का एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र क़रीबन दो महीने से मेरी फ़ायल में पड़ा हुआ है। इस लड़की के प्रश्न का जवाब जो अभी तक नहीं दिया इसमें समय के अभाव का तो केवल एक बहाना था। किसी-न-किसी तरह इस काम से अपने को मैं बचा रहा था, हालांकि मैं यह जानता था कि इस प्रश्न का क्या जवाब देना चाहिए। इस बीच में मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहन का लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती हैं। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेज की इस लड़की की जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुक़ाबला करना मेरा कर्त्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनों तक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी में लिखा है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूं।

"लड़कियों और वयस्क स्त्रियों के सामने, उनकी इच्छा के विरुद्ध ऐसे अवसर आ जाया करते हैं, जब कि उन्हें अकेली जाने की हिम्मत करनी पड़ती है—या तो उन्हें एक ही शहर में एक जगह से दूसरी जगह जाना होता है या एक शहर से दूसरे शहर को। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गंदी मनोवृत्ति वाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषा तक का प्रयोग करते हैं। और अगर भय उन्हें रोकता नहीं है, तो इससे भी आगे बढ़ने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूं कि ऐसे मौक़ों पर अहिंसा क्या काम दे सकती है? हिंसा का उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्री में काफी हिम्मत हो तो उसके पास जो भी

साधन होंगे वह उन्हें काम में लायगी और एक बार बदमाशों को सबक़ सिखा देगी। वे कम-से-कम हंगामा तो मचा सकती हैं जिससे कि लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाय और गुंडे वहां से भाग जायं। लेकिन मैं यह जानती हूं कि इसके परिणामस्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करनेवाले लोगों का अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रता की बातें सुनेंगे। पर उस आदमी के लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिल पर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्री को देखकर, जिसके साथ कि कोई मर्द साथी नहीं है, गंदी भाषा का प्रयोग करता है? उसे दलील देकर समझाने का आपको मौक़ा नहीं है। आपके उससे फिर मिलने की कोई संभावना नहीं है। हो सकता है, आप उसे पहचानें भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थिति में वह बेचारी लड़की या स्त्री क्या करे? मैं अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूं। २६ अक्तूबर की रात की बात है। मैं अपनी एक सहेली के साथ ७-३० बजे के क़रीब एक खास काम से जा रही थी। उस वक्त किसी मर्द साथी को साथ ले जाना नामुनासिब था, और काम इतना ज़रूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्ते से एक सिख युवक साइकिल पर जा रहा था। वह कुछ गुनगुनाता जाता था। जबतक कि हम सुन सके उसने गुनगुनाना जारी रखा। हमें यह मालूम था कि वह हमें लक्ष करके ही गुनगुना रहा है। हमें उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सड़क पर कोई चहल-पहल नहीं थी। हमारे चंद क़दम जाने से पहले वह लौट पड़ा। हम उसे फौरन पहचान गये, हालांकि वह अब भी हमसे ख़ासे फासले पर था। उसने हमारी तरफ़ साइकिल घुमाई। ईश्वर जाने, उसका इरादा उतरने का था, या यूं ही हमारे पास से सिर्फ़ गुज़रने का। हमें ऐसा लगा कि हम ख़तरे में हैं। हमें अपनी शारीरिक बहादुरी में विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लड़की के मुक़ाबले शरीर से कमज़ोर हूं; लेकिन मेरे हाथ में एक बड़ी-सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे अंदर हिम्मत आ गई। साइकिल की तरफ मैंने उस किताब को ज़ोर से मारा और चिल्लाकर कहा, "चुहलबाज़ी करने की

तू फिर हिम्मत करेगा ?" वह मुश्किल से अपने को संभाल सका, और साइकिल की रफ्तार बढ़ाकर वहां से रफू-चक्कर होगया। अब अगर मैंने उसकी साइकिल की तरफ़ किताब ज़ोर से न मारी होती तो वह अंत तक इसी तरह अपनी गंदी भाषा से हमें तंग करता जाता। यह तो मामूली, बल्कि नगण्य-सी घटना है; पर मैं चाहता हूं कि आप लाहौर आते और हम हत-भागिनी लड़कियों की मुसीबतों की दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्या का ठीक-ठीक हल ढूंढ सकते हैं। सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियों का मैंने वर्णन किया है उनमें लड़कियां अहिंसा के सिद्धांत का प्रयोग किस तरह कर सकती हैं और कैसे अपने-आपको बचा सकती हैं ? दूसरे, स्त्रियों को अपमानित करने की जिन युवकों को यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है, उनको सुधारने का क्या उपाय है ? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमें उस नई पीढ़ी के आने तक इंतजार करना चाहिए और तबतक हम इस अपमान को चुपचाप बर्दाश्त करती रहें जिस पीढ़ी ने कि बचपन से ही स्त्रियों के साथ भद्रोचित व्यवहार करने की शिक्षा पाई होगी। सरकार की या तो इस सामाजिक बुराई का मुक़ाबला करने की इच्छा नहीं या ऐसा करने में वह असमर्थ है। और हमारे बड़े-बड़े नेताओं के पास ऐसे प्रश्नों के लिए वक्त नहीं। कुछ जब यह सुनते हैं कि किसी लड़की ने अशिष्टता से पेश आनेवाले नवयुवकों की अच्छी तरह से मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं, 'शाबाश, ऐसा ही सब लड़कियों को करना चाहिए।' कभी-कभी किसी नेता को हम विद्यार्थियों के ऐसे दुर्व्यवहार के खिलाफ़ छटादार भाषण करते हुए पाते हैं, मगर ऐसा कोई नज़र नहीं आता, जो इस गंभीर समस्या का हल निकालने में निरंतर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे दूसरे त्यौहारों पर अख़बारों में इस क़िस्म की चेतावनी की नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखने तक के लिए औरतों को घरों से बाहर नहीं निकलना चाहिए। इसी तरह एक बात से आप जान सकते हैं कि दुनिया के इस हिस्से में हम किस क़दर मुसीबतों में फंसी हुई हैं। ऐसे-ऐसे नोटिसों को जो लिखते हैं, न तो वे ही कुछ शर्म खाते हैं कि ऐसी

चेतावनियां उन्हें निकालनी चाहिए और न पढ़नेवाले ही ?"

एक दूसरी पंजाबी लड़की को मैंने यह पत्र पढ़ने के लिए दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवन के निजी अनुभव के आधार पर इस घटना का समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे संवाददाता ने जो कुछ लिखा है, बहुत-सी लड़कियों का अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिला ने लखनऊ की अपनी विद्यार्थिनी मित्रों के अनुभव लिखे हैं। सिनेमा-थियेटरों में उनकी पिछली लाइन में बैठे हुए लड़के उन्हें दिक़ करते हैं, उनके लिए ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसे मैं अश्लील के सिवा और कोई नाम नहीं दे सकता। उन लड़कियों के साथ किये जानेवाले भद्दे मज़ाक़ भी पत्र-लेखिका ने मुझे लिखे हैं; लेकिन मैं उन्हें यहां उद्धृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षा का सवाल हो तो इसमें संदेह नहीं कि उस लड़की ने, जो अपनेको शारीरिक दृष्टि से कमज़ोर बताती है, जो इलाज—साइकिल के सवार पर ज़ोर से किताब मारकर—किया, वह बिल्कुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं 'हरिजन' में पहले भी लिख चुका हूं कि यदि कोई व्यक्ति ज़बर्दस्ती करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्ते में शारीरिक कमज़ोरी भी रुकावट नहीं डालती, भले ही उसके मुक़ाबले में शारीरिक दृष्टि से कोई बहुत बलवान विरोधी हो। और हम यह भली-भांति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताक़त इस्तेमाल करने के इतने ज्यादा तरीक़े ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लड़की किसीकी हत्या और विनाशतक कर सकती है। जिस परिस्थिति का ज़िक्र पत्र-लेखिका ने किया है, वैसी परिस्थिति में लड़कियों को आत्म-रक्षा के तरीके सिखाने का रिवाज़ आजकल बढ़ रहा है; लेकिन वह लड़की यह भी खूब समझती है कि भले ही वह उस क्षण आत्म-रक्षा के हथियार के तौर पर अपने हाथ की किताब मारकर बच गई हो; लेकिन इस बढ़ती हुई बुराई का यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे अश्लील मज़ाक़ के कारण बहुत घबराने या डर जाने की ज़रूरत नहीं; लेकिन इनकी ओर से आंख मूंद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले भी अख़बारों में छप जाने चाहिएं। इस बुराई का भंडाफोड़ करने में किसीका

झूठा लिहाज़ नहीं करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराई के लिए प्रबल लोक-मत-जैसा कोई अच्छा इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन बातों को जनता उदासीनता से देखती है; लेकिन सिर्फ जनता को ही क्यों दोष दिया जाय? उनके सामने ऐसी गुस्ताखी के मामले भी तो आने चाहिए। चोरी के मामलों तक के लिए उन्हें पता लगाकर छापा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इस तरह जबतक ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेंगे, इस बुराई का इलाज नहीं हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकार के लिए अंधकार चाहते हैं। जब उनपर रोशनी पड़ती है, वे खुद-बखुद ख़त्म हो जाते हैं।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकल की लड़की को भी तो अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है। वह अति साहस को पसंद करती है। आजकल की लड़की वर्षा या धूप से बचने के उद्देश्य से नहीं; बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए तरह-तरह के भड़कीले कपड़े पहनती है। वह अपने को रंगकर कुदरत को भी मात करना और असाधारण सुंदर दिखाना चाहती है। ऐसी लड़कियों के लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है। मैं इन पृष्ठों में बहुत बार लिख चुका हूं कि हमारे हृदय में अहिंसा की भावना के विकास के लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसा की भावना बहुत महान् प्रयत्न है। विचार और जीवन के तरीक़े में यह क्रांति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरह के-से विचार रखनेवाली लड़कियां ऊपर बताये गये तरीक़े से अपने जीवन को बिल्कुल ही बदल डालें तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके संपर्क में आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थिति में भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे हैं, लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्म पर हमला होने का ख़तरा है, तो उनमें उस पशु मनुष्य के आगे आत्म-समर्पण करने के बजाय मर जाने तक का साहस होना चाहिए। कहा जाता है कि कभी-कभी लड़की को इस तरह बाँधकर या मुंह में कपड़ा ठूंसकर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानी से मर भी नहीं सकती, जैसे कि मैंने सलाह दी है; लेकिन मैं फिर भी ज़ोरों के साथ कहता हूं कि जिस लड़की में मुक़ाबले

का दृढ़ संकल्प है, वह उसे असहाय बनाने के लिए बांधे गये सब बंधनों को तोड़ सकती है। दृढ़ संकल्प उसे मरने की शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्हींके लिए संभव है; जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है। जिसका अहिंसा पर दृढ़ विश्वास नहीं है, उन्हें रक्षा के साधारण तरीक़े सीखकर कायर युवकों के अश्लील व्यवहार से अपना बचाव करना चाहिए।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यों छोड़ दें, जिससे भली लड़कियों को हमेशा उनसे सताये जाने का डर लगता रहे? मुझे यह जानकर दुःख होता है कि ज्यादातर नौजवानों में बहादुरी का ज़रा भी माद्दा नहीं रहा; लेकिन उनमें एक वर्ग के नाते नामवर होने की डाह पैदा होनी चाहिए। उन्हें अपने साथियों में होनेवाली प्रत्येक ऐसी वारदात की जांच करनी चाहिए। उन्हें हरएक स्त्री का अपनी मां और बहन की तरह आदर करना सीखना चाहिए। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखते, तो उनकी बाक़ी सारी लिखाई-पढ़ाई फ़िज़ूल है।

और क्या यह प्रोफेसरों और स्कूल-मास्टरों का फ़र्ज़ नहीं है कि लोगों के सामने जैसे अपने विद्यार्थियों की पढ़ाई के लिए ज़िम्मेवार होते हैं उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचार के लिए भी उनको पूरी तसल्ली दें?

हरिजन सेवक,
३१ दिसंबर, १९३८

: ३२ :

आजकल की लड़कियां

ग्यारह लड़कियों की ओर से लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है, जिनके नाम और पते भी मुझे भेजे गए हैं। उनमें ऐसे हेर-फेर करके जिससे उसके मतलब में तो कोई तबदीली न हो; पर वह पढ़ने में अधिक अच्छा होजाय, मैं उसे यहां देता हूं—

"एक लड़की की 'आत्म-रक्षा कैसे करें?" शीर्षक शिकायत पर जो ३१ दिसंबर १९३८ के 'हरिजन' में प्रकाशित हुई, आपने जो टीका-टिप्पणी की वह विशेष ध्यान देने लायक है। आधुनिक यानी आजकल की लड़की ने आपको इस हदतक उत्तेजित कर दिया मालूम पड़ता है कि अंत में आपने उसे अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनने की शौक़ीन बतला डाला है। इससे स्त्रियों के प्रति आपके जिस विचार का पता लगता है वह बहुत स्फूर्तिदायक नहीं है।

इन दिनों जबकि पुरुषों की मदद करने और जीवन के भार में बराबरी का हिस्सा लेने के लिए स्त्रियां बंद दरवाज़ों से बाहर आ रही हैं, यह निः-संदेह आश्चर्य की ही बात है कि पुरुषों द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किये जाने पर अभी भी उन्हें ही दोष दिया जाता है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें दोनों का क़सूर बराबर हो। कुछ लड़कियां ऐसी भी हो सकती हैं जिन्हें अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय हो; लेकिन उस हालत में यह भी मानना ही पड़ेगा कि ऐसे पुरुष भी हैं जो ऐसी लड़कियों की टोह में गली-सड़कों में फिरते रहते हैं। और यह तो हर्गिज़ नहीं माना जा सकता या मानना चाहिए कि आजकल की सभी लड़कियां इस तरह अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनने की शौकीन

हैं। या आजकल के नवयुवक सब उनकी टोह में फिरनेवाले ही हैं। आप खुद आजकल की काफी लड़कियों के संपर्क में आये हैं और उनके निश्चय, बलिदान एवं स्त्रियोचित अन्य गुणों का आपपर ज़रूर असर पड़ा होगा।

आपको पत्र लिखनेवाली ने जैसे बदचलन आदमियों का ज़िक्र किया है उनके ख़िलाफ़ लोक-मत तैयार करने का जहांतक सवाल है, यह करना लड़कियों का काम नहीं है। यह काम हम झूठी शर्म के लिहाज़ से नहीं; बल्कि उसके असर के लिहाज़ से कहती हैं।

लेकिन संसार-भर में जिसकी इज़्ज़त है ऐसे आदमी के द्वारा ऐसी बात कही जाने से एक बार फिर उसी पुरानी और लज्जाजनक लोकोक्ति की पैरवी की जाती मालूम पड़ती है कि 'स्त्री नरक का द्वार है।'

इस कथन से यह न समझिए कि आजकल की लड़कियाँ आपकी इज़्ज़त नहीं करतीं। नवयुवकों की तरह वे भी आपका सम्मान करती हैं। उन्हें तो सबसे बड़ी यही शिकायत है कि उन्हें नफ़रत या दया की दृष्टि से क्यों देखा जाय! उनके तौर-तरीक़े अगर सचमुच दोषपूर्ण हों तो वे उन्हें सुधारने के लिए तैयार हैं; लेकिन उनकी मलामत करने से पहले उनके दोष को अच्छी तरह सिद्ध कर देना चाहिए। इस संबंध में वे न तो स्त्रियों के प्रति शिष्टता की झूठी भावना की छाया का ही सहारा लेना चाहती हैं, न वे न्यायाधीश द्वारा मनमाने तौर पर अपनी निंदा की जाने को चुपचाप बर्दाश्त करने के लिए ही तैयार हैं। सचाई का सामना तो करना ही चाहिए; आजकल की लड़की में जिसे कि आपके कथनानुसार अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है, उसका मुक़ाबला करने जितना साहस पर्याप्त रूप में विद्यमान है।'

मुझे पत्र भेजनेवालियों को शायद यह पता नहीं है कि चालीस बरस से ज़्यादा हुए तब दक्षिण अफ्रीका में मैंने भारतीय स्त्रियों की सेवा का कार्य करना शुरू किया था, जबकि इनमें से किसीका शायद जन्म न हुआ होगा। मैं तो ऐसा कुछ लिख ही नहीं सकता जो नारीत्व के लिए अपमानजनक हो। स्त्रियों के लिए इज़्ज़त की संभावना मेरे अंदर इतनी ज्यादा है कि मैं उनकी बुराई का विचार ही नहीं कर सकता। स्त्रियां तो, जैसा कि अंग्रेज़ी में उन्हें कहा गया है, हमारा सुन्दरार्द्ध हैं। फिर मैंने जो लेख लिखा

वह विद्यार्थियों की निर्लज्जता पर प्रकाश डालने के लिए था, लड़कियों की कमज़ोरी का ढोल पीटने के लिए नहीं। अलबत्ता रोग का निदान बतलाने के लिए अगर, मुझे उसका ठीक इलाज बतलाना हो तो, मुझे उन सब बातों का उल्लेख करना लाज़िमी था, जो रोग की तह में हो।

आधुनिक या आजकल की लड़की का एक ख़ास अर्थ है। इसलिए अपनी बात कुछ ही तक सीमित रखने का सवाल नहीं था। यह याद रहे कि अंग्रेज़ी शिक्षा पानेवाली सभी लड़कियां आधुनिक नहीं हैं। मैं ऐसी लड़कियों को जानता हूं, जिन्हें 'आधुनिक लड़की' की भावना से स्पर्श तक नहीं किया; लेकिन कुछ ऐसी ज़रूर हैं जो आधुनिक लड़कियां बन गई हैं। मैंने जो कुछ लिखा वह भारत की विद्यार्थिनियों को यह चेतावनी देने के ही लिए था कि वे आधुनिक लड़कियों की नक़ल करके उस समस्या को और जटिल न बनावें जो पहले ही भारी खतरा हो रही हैं; क्योंकि जिस समय मुझे यह पत्र मिला, उसी समय मुझे आंध्र से भी एक विद्यार्थिनी का पत्र मिला था, जिसमें आंध्र के विद्यार्थियों के व्यवहार की कड़ी शिकायत की गई थी और उसका जो वर्णन उसने किया था वह लाहौर की लड़की द्वारा वर्णित व्यवहार से भी बुरा था। आंध्र की वह लड़की कहती है कि उसकी साथिन लड़कियां सादा पोशाक पहनने पर भी नहीं बच पातीं; लेकिन उनमें इतना साहस नहीं है कि वे उन लड़कों के जंगलीपन का भंडाफोड़ कर दें जोकि जिस संस्था में पढ़ते हैं उसके लिए कलंक-रूप हैं। आंध्र यूनिवर्सिटी के अधिकारियों का ध्यान मैं इस शिकायत की ओर आकर्षित करता हूं।

पत्र भेजनेवाली इन ग्यारह लड़कियों को मैं इस बात के लिए निमंत्रित करता हूं कि वे विद्यार्थियों के जंगली व्यवहार के खिलाफ जेहाद बोल दें। ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद अपने-आप करते हैं। लड़कियों को पुरुष के जंगली व्यवहार से अपनी रक्षा करने की कला तो सीख ही लेनी चाहिए।

हरिजन-सेवक,

१८ फरवरी, १९३९

: ३३ :

ब्रह्मचर्य की व्याख्या

(मादरण मुक़ाम पर एक अभिनंदन-पत्र का उत्तर देते हुए लोगों के अनुरोध से गांधीजी ने ब्रह्मचर्य पर लंबा प्रवचन किया। उसका सार यहां दिया जाता है।—सं०)

"आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय पर कुछ कहूं। कितने ही विषय ऐसे हैं जिनपर मैं 'नवजीवन' में प्रसंगोपांत ही लिखता हूं। और उन पर व्याख्यान तो शायद ही देता हूं; क्योंकि यह विषय ही ऐसा है कि कहकर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्य के विषय में सुनना चाहते हैं। 'समस्त इंद्रियों का संयम' विस्तृत व्याख्या जिस ब्रह्मचर्य की है, उसके विषय में नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य को भी शास्त्रकारों ने बड़ा कठिन बताया है। यह बात ९९ फ़ीसदी सच है, एक फ़ीसदी इसमें कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम, दूसरी इंद्रियों को संयम में नहीं रखते। उनमें मुख्य है रसनेंद्रिय। जो अपनी जिह्वा को क़ब्जे में रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणि-शास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि पशु जिस दर्जे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दर्जे तक मनुष्य नहीं करता। यह सच है। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वेंद्रिय पर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं—इच्छापूर्वक नहीं, स्वभावतः ही। केवल चारे पर अपनी गुजर करते हैं—सो भी महज़ पेट भरने लायक़ ही खाते हैं। वे ज़िंदगी के लिए खाते हैं, खाने के लिए जीते नहीं हैं; पर हम तो इसके बिल्कुल विपरीत हैं। मां बच्चे को तरह-तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक के साथ प्रेम दिखाने का यही

सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन चीज़ों में स्वाद डालते नहीं; बल्कि ले लेते हैं। स्वाद तो रहता है भूख में। भूख के वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूखे आदमी को लड्डू भी फीके और अस्वादु मालूम होंगे; पर हम तो अनेक चीज़ों को खा-खाकर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता। जो आंखें ईश्वर ने हमें देखने के लिए दी हैं उनको हम मलिन करते हैं और देखने की वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता को क्यों गायत्री न पढ़ना चाहिए और बालकों को वह क्यों गायत्री सिखावे?' इसकी छानबीन करने की अपेक्षा उसके तत्त्व—सूर्योपासना को समझकर सूर्योपासना करावे तो क्या अच्छा हो। सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों कर सकते हैं। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया है। इस उपासना के मानी क्या हैं? अपना सिर ऊंचा रखकर, सूर्यनारायण के दर्शन करके, आंख की शुद्धि करना। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदय में जो नाटक है, जो सौंदर्य है, जो लीला है वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वर के-जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता और आकाश से बढ़कर भव्य रंगभूमि कहीं नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज बालक की आंखें धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती है? बल्कि माता के भावों में तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े-बड़े घरों में जो शिक्षा मिलती है उसके फलस्वरूप तो लड़का शायद बड़ा अधिकारी होगा; पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर में जाने-बेजाने जो शिक्षा बच्चों को मिलती है उससे कितनी बातें वह ग्रहण कर लेता है! मां-बाप हमारे शरीर को ढंकते हैं, सजाते हैं, पर इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है? कपड़े बदन को ढकने के लिए हैं, सर्दी गर्मी से रक्षा करने के लिए हैं, सजाने के लिए नहीं। जाड़े से ठिठुरते हुए लड़के को जब हम अंगीठी के पास धकेलेंगे, अथवा मुहल्ले में खेलने कूदने भेज देंगे, अथवा खेत में काम पर छोड़ देंगे, तभी उसका शरीर वज्र की तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है उसका शरीर वज्र की तरह ज़रूर होना चाहिए। हम तो बच्चों के शरीर का नाश कर डालते हैं। हम उसे जो घर में

रखकर गरमाना चाहते हैं उससे तो उसकी चमड़ी में इस तरह की गरमी आती है जिसे हम छाजन की उपमा दे सकते हैं। हमने शरीर को दुलराकर उसे बिगाड़ डाला है।

यह तो हुई कपड़े की बात। फिर घर में तरह-तरह की बातें करके हम उनके मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। उनकी शादी की बातें किया करते हैं, और इसी क़िस्म की चीज़ें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज़ जंगली ही क्यों न होगए? मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो सकती है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी लीला गहन है। यदि ब्रह्मचर्य के रास्ते से ये विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान होजाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनिया के साथ शारीरिक मुक़ाबला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी—आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करने के लिए हर क़िस्म के उपायों से काम लेना, हर तरह की चीज़ें खाना, शारीरिक मुक़ाबले करना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरे लड़कपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो अंग्रेज़ों की तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेंगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुक़ाबला करने का समय आया तब वहां गो-मांस-भक्षण को स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकार से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीज़ों का सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक मात्र उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपने-पर दया आती है। इस अभिनंदन-पत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनंदन-पत्र का मज़मून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किसका नाम है? और जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुखार आता है,

न कभी सिर दर्द करता है, न कभी खांसी होती है और न कभी अपेंडिसाइटिस होता है। डॉक्टर लोग कहते हैं कि नारंगी का बीज आंत में रह जाने से भी अपेंडिसाइटिस होता है; परंतु जिसका शरीर स्वच्छ और नीरोगी होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आंतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीज़ों को अपने-आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आंतें शिथिल होगई होंगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज़ हज़म न कर सका हूंगा। बच्चे ऐसी अनेक चीज़ें खा जाते हैं। माता इसका कहां ध्यान रख सकती है? पर उसकी आँत में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसलिये मैं चाहता हूं कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न हों। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझ से अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हां, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूं। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव की कुछ बूंदें पेश की हैं जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताते हैं। ब्रह्मचारी रहने का अर्थ यह नहीं कि मैं स्त्री को स्पर्श न करूं; अपनी बहन का स्पर्श न करूं, पर ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो, जिस तरह कि काग़ज़ को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ी का है। इस निर्विकार दशा का अनुभव जब हम किसी बड़ी सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्य को प्राप्त करें तो इसका अभ्यासक्रम आप नहीं बना सकते, मुझ-जैसा अधूरा भी क्यों न हो; पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्यासाश्रम से भी बढ़कर है; पर उसे हमने गिरा दिया। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और संन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था भी होगई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है कि उसका अनुकरण करके

तो आप पांच सौ वर्षों तक भी पठानों का मुक़बला न कर सकेंगे। दैवी-मार्ग का अनुसरण यदि आज हो तो आज ही पठानों का मुक़ाबला हो सकता है; क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्त्तन एक क्षण में हो सकता है, पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्ग का अनुसरण तभी हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्व-जन्म का पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेंगे।

हिंदी नवजीवन,
२६ जनवरी, १९२५

: ३४ :

विवाह-संस्कार

[गांधी-सेवा-संघ के हुदली में हुए तृतीय अधिवेशन में गांधीजी की पोती तथा श्री महादेव देसाई की बहन का विवाह हुआ था।

अपने स्वभाव के विपरीत, गांधीजी ने उस दिन सबकी उपस्थिति में वर-वधुओं से जो कहना था वह नहीं कहा; बल्कि खानगी तौर पर उन्हें उपदेश दिया। किंतु गांधीजी के वे विचार सभी दंपतियों के लिए हितकर हैं, अतः मैं उन विचारों को नीचे सारांश रूप में देने का, जहांतक मुझसे हो सकेगा, प्रयत्न करता हूं। —म० दे०]

"तुम्हें यह जानना ही चाहिए कि मैं इन संस्कारों में उसी हदतक विश्वास करता हूं, जहांतक कि ये हमारे अंदर कर्त्तव्य-पालन की भावना को जगाते हैं। जबसे मैंने अपने संबंध में विचार शुरू किया, तभीसे मेरी यह मनोवृत्ति है। तुमने जिन मंत्रों का उच्चारण किया है और जिन प्रतिज्ञाओं को लिया है, वे सब-की-सब संस्कृत में थीं; पर तुम्हारे लिए उन सबका अनुवाद कर दिया गया था। संस्कृत का हमने इसलिए आश्रय लिया; क्योंकि मैं जानता हूं कि संस्कृत शब्दों में शक्ति है, जिसके प्रभाव के नीचे आना मनुष्य पसंद ही करेगा।

"विवाह-संस्कार के समय पति ने जो इच्छाएं प्रकट की थीं, उनमें एक यह भी है कि वधू अच्छे नीरोगी पुत्र की जननी बने। इस कामना से मुझे आघात नहीं पहुंचा। इसके माने यह नहीं हैं कि संतान पैदा करना लाज़िमी है; पर इसका अर्थ यह है कि यदि संतान की आवश्यकता है, तो शुद्ध धर्म-भावना से विवाह करना ज़रूरी है। जिसे संतान की ज़रूरत नहीं, उसे विवाह करने की कोई आवश्यकता ही नहीं। विषय-भोग की तृप्ति के लिए

किया हुआ विवाह विवाह नहीं, वह तो व्यभिचार है। इसलिए आज के विवाह-संस्कारों का अर्थ यह है कि जब स्त्री-पुरुष दोनों की ही संतति के लिए स्पष्ट इच्छा हो, केवल तभी उन्हें संभोग की अनुमति मिलती है। यह सारी ही कल्पना पवित्र है। इसलिए इस काम को प्रार्थनापूर्वक ही करना होगा। कामोत्तेजना और विषय-सुख की प्राप्ति के लिए साधारणतया स्त्री-पुरुष में जो प्रेमासक्ति देखने में आती है, उसका इस पवित्र कल्पना में नाम भी नहीं। अगर दूसरी संतान नहीं चाहिए, तो स्त्री-पुरुष का ऐसा संभोग जीवन में केवल एक ही बार होगा। जो दंपति चारित्र्य और शरीर से स्वस्थ नहीं हैं, उन्हें संभोग करने की कोई आवश्यकता नहीं और अगर वे ऐसा करते हैं तो वह 'व्यभिचार' है। अगर तुमने यह सीखा हो कि विवाह विषय-तृप्ति के लिए है तो तुम्हें यह चीज़ भूल जानी चाहिए। यह तो एक वहम है। तुम्हारा सारा ही संस्कार पवित्र अग्नि की साक्षी में हुआ है। तुम्हारे अंदर जो भी काम-वासना हो उसे वह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।

"एक और वहम से तुम्हें अलग रखने के लिए मैं तुमसे कहूंगा। यह वहम दुनिया में आजकल ज़ोरों से फैलता जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि इंद्रिय-निग्रह और संयम ग़लत तरीक़े हैं, और विषय-वासना की अबाध तृप्ति और स्वच्छंद प्रेम सबसे अधिक प्राकृतिक वस्तु है। इससे अधिक विनाशकारी वहम कभी सुनने में नहीं आया। हो सकता है कि तुम आदर्श तक न पहुंच सको, तुम्हारा शरीर अशक्त हो; पर इससे आदर्श को नीचा न कर देना, अधर्म को धर्म न बना लेना। अपनी आत्म-निर्बलता के क्षणों में मेरा यह कहना याद रखना। इस पवित्र अवसर की स्मृति तुम्हें डांवाडोल न होने दे, और तुम्हें इंद्रिय-निग्रह की ओर ले जाय। विवाह-का अर्थ ही इंद्रिय-निग्रह और काम-वासना का दमन है। अगर विवाह का कोई दूसरा अर्थ है तो वह स्वार्पण नहीं; किंतु संतति-प्राप्ति को छोड़कर किसी दूसरे प्रयोजन से किया हुआ विवाह विवाह नहीं है। विवाह ने तुम्हें मैत्री और समानता के स्वर्ण-सूत्र से बांध दिया है। पति को अगर स्वामी कहा गया है तो पत्नी को 'स्वामिनी'। एक-दूसरे के दोनों सहायक हैं, जीवन के समस्त कार्य और कर्त्तव्य पूरे करने में वे एक-दूसरे का सहयोग करनेवाले हैं। लड़को ! तुमसे मैं यह कहूंगा कि अगर ईश्वर ने तुम्हें

अच्छी बुद्धि और उज्जवल भावनाएं बख्शी हैं तो तुम अपनी पत्नियों में भी इन सद्गुणों का प्रवेश करो। उनके तुम सच्चे शिक्षक और मार्ग-दर्शक बनना, उन्हें मदद देना और उन्हें मार्ग दिखाना; पर कभी उनके बाधक न बनना, न उन्हें ग़लत रास्ते पर ले जाना। तुम्हारे बीच में विचार, वचन और कर्म का पूर्ण सामंजस्य हो, तुम अपने हृदय की बात एक-दूसरे से न छिपाओ, तुम एकात्म बन जाओ।

"मिथ्याचारी या दंभी न बनना। जिस काम का करना तुम्हारे लिए असंभव हो, उसे पूरा करने के निष्फल प्रयत्नों में अपना स्वास्थ्य न गिरा बैठना। इंद्रिय-निग्रह से कभी किसीका स्वस्थ्य नष्ट नहीं होता। जिससे मनुष्य का स्वास्थ्य नष्ट होता है, वह निग्रह नहीं किन्तु बाह्य अवरोध है। सच्चे आत्म-निग्रही व्यक्ति की शक्ति तो दिन-दिन बढ़ती है और शांति के वह अधिकाधिक समीप पहुंचता जाता है। आत्म-निग्रह की सबसे पहली सीढ़ी विचारों का निग्रह है। अपनी मर्यादा को समझ लो, और जितना हो सके उतना ही करो। मैंने तो तुम्हारे सामने आदर्श रख दिया है। एक समकोण खींच दिया है। अपनी शक्ति के अनुसार जितना तुम से हो सके उतना प्रयत्न इस आदर्श तक पहुंचने का करना। पर अगर तुम असफल हो जाओ तो दुःख या शर्म का कोई कारण नहीं। मैंने तो तुम्हें सिर्फ यह बतलाया है कि यज्ञोपवीत-संस्कार की तरह विवाह भी एक स्वार्पण-संस्कार है, एक नया जन्म धारण करना है। मैंने तुमसे जो कहा है, उससे भयभीत न होना, और न कोई दुर्बलता महसूस करना। हमेशा विचार, वचन और कर्म की पूर्ण एकता को अपना लक्ष्य बनाये रहना। विचार में जितनी सामर्थ्य है, उतनी और किसी वस्तु में नहीं। कर्म वचन का अनुसरण करता है और वचन विचार का। संसार एक महान प्रबल विचार का ही परिणाम है, और जहां विचार प्रबल और पवित्र हैं वहां परिणाम भी हमेशा प्रबल और पवित्र होगा। मैं चाहता हूं कि तुम एक उच्चादर्श का अभेद्य कवच धारण करके जाओ, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम्हें कोई भी प्रलोभन हानि नहीं पहुंचा सकेगा, कोई भी अपवित्रता तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी।

"जिन विधियों को तुम्हें समझाया गया है, उन्हें याद रखना।

'मधु-पर्क' की सीधी-सादी दीखनेवाली विधि को ही ले लो। इसका अभिप्राय यह है कि सारा संस्कार मधु से परिपूर्ण है, ज़रूरत सिर्फ यह है कि जब बाक़ी सब लोग उसमें से अपना हिस्सा ले लें, तब तुम उसे ग्रहण करो। अर्थात् त्याग से ही आनंद मिलता है"

"लेकिन" एक वर ने पूछा, "अगर संतानोत्पत्ति की इच्छा न हो, तो क्या विवाह ही नहीं करना चाहिए?"

"निश्चय ही नहीं," गांधीजी ने कहा, "आध्यात्मिक विवाहों में मेरा विश्वास नहीं है। कई ऐसे उदाहरण ज़रूर मिलते हैं कि जिनमें पुरुषों ने शारीरिक संभोग का कोई ख़याल न कर सिर्फ स्त्रियों की रक्षा करने के विचार से ही विवाह किये; लेकिन यह निश्चय है कि ऐसे उदाहरण विरले ही हैं। पवित्र वैवाहिक जीवन के बारे में मैंने जो-कुछ लिखा है, वह सब तुम्हें जरूर पढ़ लेना चाहिए। मुझपर तो, मैंने महाभारत में जो कुछ पढ़ा है, दिन-पर-दिन उसका ज़्यादह से ज़्यादह असर पड़ता जा रहा है। उसमें व्यास के नियोग करने का वर्णन है। उसमें व्यास को सुन्दर नहीं बताया है, बल्कि वह तो इससे विपरीत थे। उनकी शक्ल-सूरत का उसमें जो वर्णन आया है, उसमें मालूम पड़ता है कि देखने में वह बड़े कुरूप थे, प्रेम-प्रदर्शन के लिये कोई हाव-भाव भी उन्होंने नहीं बताये ? बल्कि संभोग से पहले अपने सारे शरीर पर उन्होंने घी चुपड़ लिया था। उन्होंने संभोग किया वह विषय-वासना की पूर्त्ति के लिए नहीं, बल्कि संतानोत्पत्ति के लिए किया था। संतान की इच्छा बिल्कुल स्वाभाविक है, और जब एक बार यह इच्छा पूर्ण हो जाय, तो फिर संभोग नहीं करना चाहिये।

मनु ने पहली संतति को धर्मज अर्थात् धर्म-भावना से उत्पन्न बताया है और उसके बाद पैदा होने वाले को कामज अर्थात् कामवृत्ति के फल-स्वरूप पैदा होनेवाला कहा है। सार-रूप में वैषयिक संबंधों का यही विधान है और 'विधान ही ईश्वर है और विधान या नियम का पालन ही ईश्वर की आज्ञा को मानना है।' यह याद रखो कि तीन बार तुमसे यह वचन लिया गया है कि 'किसी भी रूप में मैं इस विधान का भंग नहीं करूंगा।' अगर मुट्ठी-भर स्त्री-पुरुष ही हमें ऐसे मिल जायं, जो इस

विधान से बंधने को तैयार हों तो बलवान और सच्चे स्त्री-पुरुषों की एक जाति-की-जाति पैदा हो जायगी।"

हरिजन सेवक,
२४ अप्रेल, १६३७

: ३५ :

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्र में प्रकाशित एक अत्यंत बीभत्स पुस्तक के विज्ञापन की कतरन एक बहन ने मुझे भेजी है और लिखा है:

'.....के पृष्ठों पर नज़र डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखने में आया। मैं नहीं जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता है या नहीं। आपके पास यह जाता भी हो तो भी मेरे खयाल में इसकी तरफ़ नज़र डालने का आपको कभी समय नहीं मिलता होगा। पहले भी एक बार मैंने आपसे 'अश्लील विज्ञापनों' के बारे में बात की थी। मेरी यह बड़ी ही इच्छा है कि इस विषय में आप किसी समय कुछ लिखें। जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है उस क़िस्म की पुस्तकों की आज बाज़ार में बाढ़-सी आ रही है, यह बिल्कुल सच्ची बात है; पर.....जैसे जवाबदार पत्रों के लिए क्या यह उचित है कि वे ऐसी गंदी पुस्तकों की बिक्री को प्रोत्साहन दें ? इन चीज़ों से मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुखता है कि मैं सिवा आपके और किसी को लिख नहीं सकती। ईश्वर ने स्त्री को एक विशेष उद्देश्य के लिए जो वस्तु दी है उसका विज्ञापन लंपटता को उत्तेजन देने के लिए किया जाय, यह चीज़ इतनी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दों से प्रकट नहीं की जा सकती.....। मैं चाहती हूं कि इस संबंध में भारत के प्रमुख अखबारों और मासिक-पत्रों की क्या जवाबदारी है, इसके बारे में आप लिखें। आपके पास आलोचना के लिए भेज सकूं, ऐसी यह कोई पहली ही कतरन नहीं है।"

इस विज्ञापन में से कुछ भी अंश मैं यहां उद्धृत करना नहीं चाहता। पाठकों से सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है

उसमें के व्यंजित लेखों का वर्णन करने में जितनी अश्लील भाषा का उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है। इस पुस्तक का नाम "स्त्री के शरीर का सौंदर्य' है; और विज्ञापन देनेवाली फर्म पाठकों से कहती है कि जो यह पुस्तक ख़रीदेगा उसे 'नववधू के लिए नया ज्ञान' और 'संभोग अथवा संभोगी को कैसे रिझाया जाय ?' नामक यह दो पुस्तकें और मुफ्त दी जायंगी।

इस क़िस्म की पुस्तकों का विज्ञापन करनेवालों को मैं किसी तरह रोक सकता हूं या पत्र-संपादकों और प्रकाशकों से उनके अख़बारों द्वारा मुनाफ़ा उठाने का इरादा मैं छुड़वा सकता हूं, ऐसी आशा अगर यह बहन रखती हैं तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तकों या विज्ञापनों के प्रकाशकों से मैं चाहे जितनी अपील करूं उससे कोई मतलब निकलने का नहीं; किंतु मैं इस पत्र लिखनेवाली बहन से और ऐसी ही दूसरी विदुषी बहनों से इतना कहना चाहता हूं कि वे बाहर मैदान में आयं और जो काम ख़ास करके उनका है, और जिसके लिए उनमें ख़ास योग्यता है, उस काम को वे शुरू कर दें। अक्सर देखने में आया है कि किसी मनुष्य को ख़राब नाम दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद ख़राब है। स्त्री को 'अबला' कहना उसे बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहने का अर्थ अगर यह हो कि स्त्री में पुरुष की-जैसी पाशविक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रा में नहीं है जितनी कि पुरुष में होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है; पर यह चीज़ तो स्त्री को पुरुष की अपेक्षा पुनीत बनानेवाली है; और स्त्री पुरुष की अपेक्षा पुनीत तो है ही। वह अगर आघात करने में निर्बल है तो कष्ट सहन करने में बलवान है। मैंने स्त्री को त्याग और अहिंसा की मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्व की रक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुष ने स्त्री के सतीत्व की रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं। वह ऐसा करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही राम ने सीता के या पांच पाण्डवों ने द्रौपदी के शील की रक्षा नहीं की। इन दोनों सतियों ने अपने सतीत्व के बल से ही अपने

शील की रक्षा की। कोई भी मनुष्य बग़ैर अपनी सम्मति के अपनी इज़्ज़त-आबरू नहीं खोता। कोई नर-पशु किसी स्त्री को बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे उस स्त्री के शील या सतीत्व का लोप नहीं होगा; इसी तरह कोई दुष्टा स्त्री किसी पुरुष को जड़ बना देनेवाली दवा खिला दे और उससे अपना मनचाहा कराये तो इससे उस पुरुष के शील या चारित्र्य का नाश नहीं होता।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुषों के सौंदर्य की प्रशंसा में पुस्तकें बिल्कुल नहीं लिखी गईं। तो फिर पुरुष की विषय-वासना उत्तेजित करने के लिए ही साहित्य हमेशा क्यों तैयार होता रहे? यह बात तो नहीं कि पुरुष ने स्त्री को जिन विशेषणों से भूषित किया है उन विशेषणों को सार्थक करना उसे पसन्द है? स्त्री को यह क्या अच्छा लगता होगा कि उसके शरीर के सौंदर्य का पुरुष अपनी भोग-लालसा के लिए दुरुपयोग करे। पुरुष के आगे अपनी देह की सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हां, तो किसलिये? मैं चाहता हूं कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहनें खुद अपने दिल से पूछें: ऐसे विज्ञापनों और ऐसे साहित्य से उनका दिल दुखता हो तो उन्हें इन चीज़ों के लिए अविराम युद्ध चलाना चाहिए, और एक क्षण में वे इन चीजों को बंद करा देंगी। स्त्री में जिस प्रकार बुरा करने की, लोक का नाश करने की शक्ति है, उसी प्रकार भला करने की, लोक-हित साधन करने की, शक्ति भी उसमें सोई हुई पड़ी है। यह भान अगर स्त्री को हो जाय तो कितना अच्छा हो। अगर वह यह विचार छोड़ दे कि वह खुद अबला है और पुरुष के खेलने की गुड़िया होने के ही योग्य है तो वह खुद अपना तथा पुरुषका—फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो या पति हो—जन्म सुधार सकती है, और दोनों के ही लिए इस संसार को अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र-राष्ट्र के बीच के पागलपनभरे युद्धों से और इससे भी ज्यादा पागलपनभरे समाज-नीति की नींव के विरुद्ध लड़े जानेवाले युद्धों से अगर समाज को अपना संहार नहीं होने देना है, तो स्त्री को पुरुष की तरह नहीं, जैसे कि कुछ स्त्रियाँ करती हैं; बल्कि स्त्री की तरह अपना योग देना ही होगा। अधिकाँशतः बिना किसी कारण के ही मानव-प्राणियों के

संहार करने की जो शक्ति पुरुष में है उस शक्ति में उसकी हमसरी करने से स्त्री मानव-जाति को सुधार नहीं करती। पुरुष की जिस भूल से पुरुष के साथ-साथ स्त्री का भी विनाश होनेवाला है उस भूल में से पुरुष को बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्री को समझ लेना चाहिये। यह वाहियात विज्ञापन तो सिर्फ़ यही बताता है कि हवा का रुख़ किस तरफ़ है। इसमें बेशर्मी के साथ स्त्री का अनुचित लाभ उठाया गया है। 'दुनिया की जंगली जातियों की स्त्रियों के शरीर-सौंदर्य' को भी इसने नहीं छोड़ा।

हरिजन-सेवक,
१२ नवंबर, १९३६

: ३६ :

अश्लील विज्ञापनों को कैसे रोका जाय ?

अश्लील विज्ञापन-संबंधी मेरा लेख देखकर एक सज्जन लिखते हैं—

'जो अखबार, आपने लिखा, वैसी अश्लील चीज़ों के इश्तिहार देते हैं उनके नाम ज़ाहिर करके आप अश्लील विज्ञापन का प्रकाशन रोकने के लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं।"

इन सज्जन ने जिस सेंसरशिप की मुझे सलाह दी है उसका भार मैं नहीं ले सकता; लेकिन इससे अच्छा एक उपाय मैं सुझा सकता हूं। जनता को अगर यह अश्लीलता अखरती हो, तो जिन अखबारों या मासिक-पत्रों में आपत्तिजनक विज्ञापन निकलें उनके ग्राहक यह कर सकते हैं कि उन अखबारों का ध्यान इस ओर आकर्षित करें और अगर फिर भी वे ऐसा करने से बाज़ न आयं तो उन्हें ख़रीदना बन्द कर दें। पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि जिस बहन ने मुझे अश्लील विज्ञापनों की शिकायत भेजी थी, उसने इस दोष के भागी मासिक-पत्र के संपादक को भी इस बारे में लिखा था, जिसपर उन्होंने इस भूल के लिए खेद-प्रकाश करते हुए उसे आगे से न छापने का वादा किया है।

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैंने इस बारे में जो कुछ लिखा, उसका कुछ अन्य पत्रों ने भी समर्थन किया है। 'निस्पृह' (नागपुर) के संपादक लिखते हैं:

"अश्लील विज्ञापनों के बारे में 'हरिजन' में आपने जो लेख लिखा है उसे मैंने बहुत सावधानी के साथ पढ़ा। यही नहीं, बल्कि मैंने उसका अविकल अनुवाद भी 'निस्पृह' में दिया है और एक छोटी-सी संपादकीय टिप्पणी भी उस पर मैंने लिखी है।

"मैं बतौर नमूने के एक विज्ञापन इस पत्र के साथ भेज रहा हूं, जो अश्लील न होते हुए भी एक तरह से अनैतिक तो है ही। इस विज्ञापन में साफ झूठ है। आमतौर पर गाँववाले ही ऐसे विज्ञापनों के चक्कर में फंसते हैं। मैं ऐसे विज्ञापन लेने से इंकार करता रहा हूं और इस विज्ञापनदाता को भी यही लिख रहा हूं। जैसे अखबार में निकलनेवाली समस्त पाठ्य-सामग्री पर संपादक की निगाह रहना जरूरी है, उसी तरह विज्ञापनों पर नजर रखना भी उसका कर्त्तव्य है। और कोई संपादक अपने अखबार का ऐसे लोगों द्वारा उपयोग नहीं होने दे सकता, जो भोले भाले देहातियों की आँखों में धूल झोंककर उन्हें ठगना चाहते हैं।"

हरिजन-सेवक,

१९ दिसंबर, १९३६

परिशिष्ट

: १ :

संतति-निरोध की हिमायतिन

दरिद्रनारायण की सेवा में अपना सब-कुछ समर्पण कर देनेवाले बूढ़े किसान से सर्वथा विपरीत, इंग्लैंड की एक श्रीमती हाउ मार्टिन हैं, जो कृत्रिम संतति-निरोध की ज़बर्दस्त प्रचारिका हैं और भारत के ग़रीबों की मदद के लिए अपना संदेश लेकर भारत पधारी हैं। गांधीजी के पास वह इस इरादे से आई हैं कि या तो उन्हें अपने विचारों का बना लें या खुद उनके विचारों पर आजायं। निस्संदेह, वह हिन्दुस्तान में पहली बार आई हैं और यहाँ के ग़रीबों की हालत अभी उन्होंने मुश्किल से देखी होगी, इसलिये ब्रिटेन की गंदी बस्तियों के अपने अनुभव की ही उन्होंने चर्चा की और उन 'अबलाओं' का बड़ा पक्ष लिया, जिन्हें कि सशक्त पुरुष के आगे झुकना पड़ता है।

लेकिन इस पहली ही दलील पर गांधीजी ने उन्हें आड़े हाथों लिया। 'कोई स्त्री अबला नहीं है।' गांधीजी ने कहा "कमज़ोर-से-कमज़ोर स्त्री भी पुरुष से ज्यादा बल रखती है और अगर आप भारत के गांवों में चलें तो मैं यह बात आपको दिखला देने के लिए पूरी तरह तैयार हूं। वहां प्रत्येक स्त्री आपसे यही कहेगी कि उसकी इच्छा न हो तो माई का जाया कोई ऐसा लाल नहीं जो उस पर बलात्कार कर सके। यह बात अपनी पत्नी के साथ के खुद अपने अनुभव से कह सकता हूं और यह याद रखिये कि मेरा उदाहरण कोई विरला ही नहीं है। सच तो यह है कि झुकने के बजाय मर जाने की भावना मौजूद हो तो कोई राक्षस भी स्त्री को अपनी दुष्ट चेष्टा के लिए मजबूर नहीं कर सकता। यह तो

परस्पर की रज़ामंदी की बात है। स्त्री-पुरुष दोनों में ही पशुत्व और देवत्व का सम्मिश्रण है, और अगर हम उनमें से पशुत्व को दूर कर सकें तो यह श्रेष्ठ और हितकर ही होगा।"

"लेकिन" श्रीमती हाउ मार्टिन ने पूछा, "अगर पुरुष अधिक बच्चों से बचने के लिए अपनी पत्नी को छोड़कर पर-स्त्री के पास जाय तो बेचारी पत्नी क्या करे ?"

"यह तो आप अपनी बातें बदल रही हैं; लेकिन यह याद रखिये कि अगर आप अपनी दलील को निर्भ्रांत न रखेंगी तो आप जरूर ग़लत परिणाम पर पहुंचेंगी। व्यर्थ की कल्पनाएं करके पुरुष को पुरुष से कुछ और तथा स्त्री को स्त्री से अन्यथा बनाने की कोशिश न कीजिए। आपके संदेह का आधार क्या है, यह तो मुझे समझ लेने दीजिये। जब मैंने यह कहा कि संतति-निरोध का आपका प्रचार काफ़ी फैल चुका है, तब इस विनोद के पीछे कुछ गंभीरता थी; क्योंकि मुझे यह मालूम है कि ऐसे भी कुछ स्त्री-पुरुष हैं जो समझते हैं कि संतति-निरोध में ही हमारी मुक्ति है। इसलिए मैं आपसे इसका आधार समझ लेना चाहता हूं।"

"मैं इसमें संसार की मुक्ति नहीं देखती", श्रीमती हाउ मार्टिन ने कहा, "मैं तो सिर्फ यही कहती हूं कि संतति-निरोध का कोई रूप अख्तियार किये बग़ैर प्रजा की मुक्ति नहीं है। आप ऐसा एक तरीके से करेंगे, मैं दूसरे तरीके से करूंगी। आपके तरीके का भी मैं प्रतिपादन करती हूं; लेकिन सभी हालतों में नहीं। आप तो, मालूम होता है, एक सुन्दर वस्तु को ऐसा समझते हैं मानों वह कोई आपत्तिजनक चीज़ हो; पर यह याद रखिये कि दो व्यक्ति जब नये जीवन का निर्माण करने जाते हैं तो वे पशुत्व से ऊपर उठकर देवत्व के अत्यंत निकट होते हैं। इस क्रिया में कोई बात ऐसी है जो बड़ी सुन्दर है।"

"यहां भी आप भ्रम में हैं", गांधीजी ने कहा, "नए जीवन का निर्माण देवत्व के अत्यंत निकट है, इस बात को मैं जानता हूं। मैं जो-कुछ चाहता हूं वह तो यही है कि यह दैवी रूप में ही किया जाय, मतलब यह कि पुरुष-स्त्री नए जीवन का निर्माण करने यानी संतानोत्पत्ति के सिवा

और किसी इच्छा से संभोग न करें ? लेकिन अगर वे खाली काम-वासना शांत करने के लिए ही संभोग करें तब तो वे शैतानियत के ही बहुत नज़-दीक होते हैं। दुर्भाग्यवश, मनुष्य इस बात को भूल जाता है कि वह देवत्व के निकटतम है, वह अपने अंदर विद्यमान पशु-वासना के पीछे भटकने लगता है और पशु से भी बदतर बन जाता है।''

"लेकिन पशुत्व की आपको क्यों निंदा करनी चाहिए ?"

"मैं निंदा नहीं करता। पशु तो, उसके लिए कुदरत ने जो नियम बनाये हैं, उनका पालन करता । सिंह अपने क्षेत्र में एक श्रेष्ठ प्राणी है और मुझको खा जाने का उसे पूरा अधिकार है; लेकिन मेरी यह विशेषता नहीं है कि मैं पंजे बढ़ाकर आपके ऊपर झपटूं। मैं ऐसा करूं तो अपने को हीन बनाकर पशु से भी बदतर बन जाऊंगा।"

"मुझे अफसोस है," श्रीमती हाट मार्टिन ने कहा, "मैंने अपने भाव ठीक तरह व्यक्त नहीं किये। इस बात को मैं स्वीकार करती हूं कि अधिकांश मामलों में इससे उनकी मुक्ति नहीं होगी; लेकिन यह ऐसी बात ज़रूर है जिससे जीवन ऊंचा बनेगा। मेरी बात आप समझ गये होंगे, हालांकि मुझे शक है कि मैं अपनी बात बिल्कुल स्पष्ट नहीं कर पाई हूं।"

"नहीं-नहीं, मैं आपकी अव्यवस्थितता का कोई फायदा नहीं उठाना चाहता। हां, यह ज़रूर चाहता हूं कि मेरा दृष्टिकोण आप समझ लें। गलतफ़हमियों पर न चलिए। उपरि-मार्ग और अधो-मार्ग में से आदमी को कोई एक ज़रूर चुनना होगा; लेकिन उसमें पशुत्व का अंश होने के कारण वह उपरि-मार्ग के बदले अधो-मार्ग उसके सामने सुंदर आवरण से परिवेष्टित हो। सद्गुण के परदे में पास सामने आने पर मनुष्य आसानी से उसका शिकार हो जाता है, और मेरी स्टोप्स तथा दूसरे (कृत्रिम संतति-निरोध के हिमायती) यही कर रहे हैं। मैं अगर विलासता का प्रचार करना चाहूं तो, मैं जानता हूं, मनुष्य आसानी से उसे ग्रहण कर लेंगे। मैं जानता हूं कि आप-जैसे लोग अगर निःस्वार्थ भाव से उत्साह के साथ अपने सिद्धांत के प्रचार में लगे रहें तो ज़ाहिरा तौर पर शायद आपको विजय भी मिल जाय; लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि ऐसा करके आप निश्चित रूप से मृत्यु के मार्ग पर पहुंचेंगे—इसमें शक नहीं कि ऐसा आप करेंगे

इस बात को बिल्कुल न जानते हुए कि आप कितनी शरारत कर रहे हैं। अधो-मार्ग की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि उसके लिए किसी समर्थन या दलील की ज़रूरत नहीं होती। यह तो हमारे अंदर मौजूद ही है, और अगर हम इसपर रोक लगाकर इसे नियंत्रित न रखें तो रोग और महामारी का ख़तरा है।"

श्रीमती हाड मार्टिन ने जो अबतक देवत्व और शैतानियत के बीच भेद को स्वीकार करती मालूम पड़ती थीं, कहा कि ऐसा कोई भेद नहीं है और लोग समझते हैं कि उससे कहीं ज़्यादा वे परस्पर-संबद्ध हैं। संतति-निरोध की सारी फिलासफी के पीछे दरअसल यही बात है, और संतति-निरोध के हिमायती यह भूल जाते हैं कि यही उनका रामबाण इलाज है।

"तो आप ऐसा समझती हैं कि देव और पशु एक ही चीज़ है? क्या आप सूर्य में विश्वास करती हैं? अगर करती हैं तो क्या आप यह नहीं सोचतीं कि छाया में भी आपको विश्वास करना चाहिए?" गांधीजी ने पूछा।

"आप छाया को शैतान क्यों कहते हैं?"

"आप चाहें तो उसे ईश्वरेतर कह सकती हैं।"

"मैं यह नहीं समझती कि छाया 'ईश्वरेतर' नहीं है। जीवन तो सर्वत्र है।"

"जीवन का प्रभाव-जैसी भी कोई चीज़ है। क्या आप जानती हैं कि हिंदू लोग अपने-अपने प्रियतमों तक के शरीर को उनकी जीवन-ज्योति के बुझते ही जल्द-से-जल्द जलाकर भस्म कर देते हैं? यह ठीक है कि समस्त जीवन में मूलभूत एकता है; लेकिन विभिन्नता भी है। हमारा काम है कि उस विभिन्नता में प्रवेश करके उसके अंदर समाविष्ट एकता का पता लगायें; लेकिन बुद्धि के द्वारा नहीं, जैसाकि आप प्रयत्न करने की कोशिश कर रही हैं। जहां सत्य है, वहां असत्य भी ज़रूर होना चाहिए; इसी तरह जहां प्रकाश है, वहां छाया भी ज़रूर होगी। जबतक आप तर्क और बुद्धि ही नहीं, बल्कि शरीर का भी सर्वथा उत्सर्ग न कर दें तबतक आप इस व्यापक ज्ञान की अनुभूति नहीं कर सकतीं।"

श्रीमती हाड मार्टिन भौंचक्की रह गईं। उनकी मुलाक़ात का समय बीता जा रहा था, लेकिन गांधीजी ने कहा, "नहीं" मैं आपको और समय देने के लिए भी तैयार हूं, लेकिन इसके लिए आपको वर्धा आकर मेरे पास रहना होगा। मैं भी आप से कम उत्साही नहीं हूं लेकिन जबतक आप मुझे अपने विचारों का न बना लें या खुद मेरे विचारों पर न आजायं तबतक आपको हिंदुस्तान से नहीं जाना चाहिए।"

यह आनंदप्रद वार्ता सुनते हुए, जो दूसरे कार्यक्रमों के कारण यहीं रोकनी पड़ी, मुझे असीसी के संत फ्रांसिस के इन महान शब्दों का स्मरण हो गया—"प्रकाश ने देखा और अंधकार लुप्त होगया। प्रकाश ने कहा, "मैं वहां जाऊंगा ?" शांति ने दृष्टि फेंकी और युद्ध भाग गया, शांति ने कहा, "मैं वहां जाऊंगी।" प्रेम उदित हुआ घृणा उड़ गई। प्रेम ने कहा, "मैं वहां जाऊंगा।" और यह बात सूर्य-प्रकाश की भांति सर्वत्र फैलकर हमारे अंतर में प्रवेश कर गई।

—महादेव देसाई

: २ :

पाप और संतति-निग्रह

गांधीजी के ध्यान में सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी ही रहते हैं और स्वप्न भी उन्हें इसी विषय के आते हैं। स्वामी योगानंद नाम के एक संन्यासी सोलह बरस अमेरिका में रहकर अभी-अभी स्वदेश वापस आये हैं। गत सप्ताह रांची जाते हुए गांधीजी से मिलने के लिए वे यहां उतर पड़े और दो दिन ठहरे। उनके साथ गांधीजी का जो खासा लंबा संवाद हुआ, उसमें भी उनके इस ग्राम-चिंतन की काफी स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। स्वामी योगानंद केवल धर्म-प्रचार के लिए अमेरिका गये थे और उनके कहे अनुसार उन्होंने आचरण और उपदेश के द्वारा भारतवर्ष का आध्यात्मिक संदेश संसार को देने का ही सब जगह प्रयत्न किया। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि "भारतवर्ष के बलिदान से ही जगत् का उद्धार होगा।"

गांधीजी के साथ उन्हें पाप, संतति-निग्रह इन दो विषयों पर चर्चा करनी थी। अमेरिका के जीवन की काली बाजू उन्होंने अच्छी तरह देखी थी और अमेरिका के युवकों और युवतियों के विलासितामय जीवन की एक-एक बात पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तक के लेखक जज लिंडसे के साथ उनका वहां काफी निकट का परिचय था।

गांधीजी ने कहा, "दुनिया में पाप क्यों है" इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। मैं तो एक ग्रामवासी जो जवाब देगा वही दे सकता हूं। जगत् में प्रकाश है तो अंधकार भी है। इसी तरह जहां पुण्य है वहां पाप होगा ही। किंतु पाप और पुण्य तो हमारी मानवी दृष्टि से हैं। ईश्वर के आगे तो पाप और पुण्य-जैसी कोई चीज़ ही नहीं। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनों से ही परे है। हम ग़रीब ग्रामवासी उसकी लीला का मनुष्य की वाणी

में वर्णन करते हैं; पर हमारी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है।

"वेदांत कहता है कि यह जगत माया रूप है। यह निरूपण भी मनुष्य की तोतली वाणी का है। इसलिए मैं कहता हूं कि मैं इन बातों में पड़ता ही नहीं। ईश्वर के घर के गूढ़-से-गूढ़ भेद जानने का भी मुझे अवसर मिले तो भी मैं उन्हें जानने की हामी न भरूं। कारण यह है कि मुझे यह पता नहीं कि मैं वह सब जानकर क्या करूंगा! हमारे आत्म-विकास के लिए इतना ही जानना काफी है कि मनुष्य जो कुछ अच्छा काम करता है ईश्वर निरंतर उसके साथ रहता है। यह भी ग्रामवासी का निरूपण है।"

"ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है ही, तो वह हमें पाप से मुक्त क्यों नहीं कर देता ?" स्वामीजी ने पूछा।

"मैं इस प्रश्न की भी उधेड़-बुन में नहीं पड़ना चाहता। ईश्वर और हम बराबर नहीं हैं। बराबरीवाले ही एक-दूसरे से ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं, छोटे-बड़े नहीं। गांववाले यह नहीं पूछते कि शहरवाले अमुक काम क्यों करते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि अगर हमने वैसा किया तो हमारा सर्व-नाश तो निश्चित ही है।"

"आपके कहने का आशय मैं अच्छी तरह समझता हूं। आपने यह बड़ी ज़ोरदार दलील दी है। पर ईश्वर को किसने बनाया ?" स्वामीजी ने पूछा।

"ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान् है तो अपना सिरजनहार उसे स्वयं ही होना चाहिए।"

"ईश्वर स्वतंत्र सत्तावान् है या लोक-तंत्र में विश्वास करनेवाला ? आपका क्या विचार है ?"

"मैं इन बातों पर बिल्कुल विचार नहीं करता। मुझे ईश्वर की सत्ता में तो हिस्सा लेना नहीं, इसलिए ये प्रश्न मेरेलिए विचारणीय नहीं हैं। मैं तो, मेरे आगे जो कर्त्तव्य है, उसे करके ही संतोष मानता हूं। जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई, और क्यों हुई, इन सब प्रश्नों की चिंता में मैं क्यों पड़ूं ?"

"ईश्वर ने हमें बुद्धि तो दी है ?"

"बुद्धि तो ज़रूर दी है; पर वह बुद्धि हमें यह समझाने में सहायता देती है कि जिन बातों का हम ओर-छोर नहीं निकाल सकते उनमें हमें

माथापच्ची नहीं करनी चाहिए। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि सच्चे ग्रामवासी में अद्‌भुत व्यवहारिक बुद्धि होती है और इससे वह कभी इन पहेलियों की उलझन में नहीं पड़ता।"

"अब मैं एक दूसरा ही प्रश्न पूछता हूं। क्या आप यह मानते हैं कि पुण्यात्मा होने की अपेक्षा पापी होना सहल है, अथवा ऊपर चढ़ने की अपेक्षा नीचे गिरना आसान है।"

"ऊपर से तो ऐसा मालूम होता है, पर असल बात यह है कि पापी होने की अपेक्षा पुण्यात्मा होना सहल है। कवियों ने कहा है सही कि नरक का मार्ग आसान है; पर मैं ऐसा नहीं मानता। मैं यह भी नहीं मानता कि संसार में अच्छे आदमियों की अपेक्षा पापी लोग अधिक हैं। अगर ऐसा है तो ईश्वर स्वयं पाप की मूर्त्ति बन जायगा; पर वह तो अहिंसा और प्रेम का साकार रूप है।"

"क्या मैं आपका अहिंसा की परिभाषा जान सकता हूं?"

"संसार में किसी भी प्राणी को मन, वचन और कर्म से हानि न पहुंचाना अहिंसा है।"

गांधीजी की इस व्याख्या से अहिंसा के संबंध में काफी लंबी चर्चा हुई; पर उस चर्चा को मैं छोड़ देता हूं। 'हरिजन' और 'यंगइंडिया' में न जाने कितनी बार इस विषय पर चर्चा हो चुकी है।

"अब मैं दूसरे विषय पर आता हूं," स्वामीजी ने कहा, "क्या आप संतति-निग्रह के मुक़ाबले में संयम को अधिक पसंद करते हैं?"

"मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीति से या पश्चिम में प्रचलित मौजूदा रीतियों से संतति-निग्रह करना आत्म-घात है। मैंने यहां जो 'आत्म-घात' शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजा का समूल नाश हो जायगा। 'आत्म-घात' शब्द को मैं इससे ऊंचे अर्थ में लेता हूं। मेरा आशय यह है कि संतति-निग्रह की ये रीतियां मनुष्य को पशु से बदतर बना देती हैं। यह अनीति का मार्ग है।"

"पर हम यह कहांतक बर्दाश्त करें कि मनुष्य अविवेक के साथ संतान पैदा करता ही चला जाय? मैं एक ऐसे आदमी को जानता हूं, जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमें पानी मिला देता था, ताकि

उसे अपने तमाम बच्चों को बांट सके। बच्चों की संख्या हर साल बढ़ती ही जाती थी। क्या इसमें आप पाप नहीं मानते ?"

"इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोषण न हो सके यह पाप तो है ही; पर मैं यह मानता हूं कि अपने कर्म के फल से छुटकारा पाने की कोशिश करना तो उससे भी बड़ा पाप है। इससे तो मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है।"

"तब लोगों को यह सत्य बताने का सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग क्या है !"

"सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम संयम का जीवन बितावें। उपदेश से आचरण ऊंचा है।"

"मगर पश्चिम के लोग हमसे पूछते हैं कि तुम लोग अपनेको पश्चिम के लोगों से अधिक आध्यात्मिक मानते हो, फिर भी हम लोगों के मुकाबले में तुम्हारे यहां बालकों की मृत्यु अधिक संख्या में क्यों होती है? महात्मा-जी, आप मानते हैं कि मनुष्य अधिक संख्या में संतान पैदा करें ?"

'मैं तो यह माननेवाला हूं कि संतान बिल्कुल पैदा न की जाय।"

"तब तो सारी प्रजा का नाश हो जायगा।"

"नाश नहीं होगा, प्रजा का और भी सुन्दर रूपांतर हो जायगा। पर यह कभी होने का नहीं; क्योंकि हमें अपने पूर्वजों से यह विषय-वृत्ति का उत्तराधिकार युगानयुग से मिला हुआ है। युगों की इस पुरानी आदत को काबू में लाने के लिए बहुत बड़े प्रयत्न की जरूरत है, तो भी वह प्रयत्न सीधा-सादा है। पूर्ण त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है। जिससे यह न हो सके वह खुशी से विवाह कर ले, पर विवाहित जीवन में भी वह संयम से रहे।"

"जन-साधारण को संयममय जीवन की बात सिखाने की क्या आपके पास कोई व्यावहारिक रीति है ?"

"जैसा कि एक क्षण पहले मैं कह चुका हूं, हमें पूर्ण संयम की साधना करनी चाहिये और जन-साधारण के बीच जाकर संयमय जीवन बिताना चाहिये। भोग-विलास छोड़कर ब्रह्मचर्य के साथ अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरण का प्रभाव अवश्य ही जनता पर पड़ेगा। ब्रह्मचर्य और

अस्वाद-व्रत के बीच अविच्छिन्न संबंध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, वह अपने प्रत्येक कार्य में संयम से काम लेगा और सदा नम्र बनकर रहेगा।"

स्वामीजी ने कहा, "मैं समझ गया। जन-साधारण को संयम के आनंद का पता नहीं और हमें यह चीज़ उसे सिखानी है; पर मैंने पश्चिम के लोगों की जिस दलील के बारे में आपसे कहा है, उसपर आपका क्या मत है?"

"मैं यह नहीं मानता कि हम लोगों में पश्चिम के लोगों की अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज हमारा इतना अधःपतन न होगया होता। किन्तु इस बात से कि पश्चिम के लोगों की उम्र औसतन हम लोगों की उम्र से ज्यादा लंबी होती है, यह साबित नहीं होता कि पश्चिम में आध्यात्मिकता है। जिसमें अध्यात्म-वृत्ति होती है, उसकी आयु अधिक लंबी होनी चाहिये, यह बात नहीं है, बल्कि उसका जीवन अधिक अच्छा, अधिक शुद्ध होना चाहिए।"

—महादेव देसाई

: ३ :

श्रीमती सेंगर और संतति-निरोध

श्रीमती मार्गरेट सेंगर अभी थोड़े ही समय पहले गाँधीजी से वर्धा में मिली थीं। गांधीजी ने उन्हें अच्छी तरह समय दिया था। भारतवर्ष छोड़ने के पहले उन्होंने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' में एक लेख लिखा है, जिसमें यह दिखाया गया है कि गांधीजी के साथ उनकी जो बात-चीत हुई उससे उन्हें कितना थोड़ा लाभ प्राप्त हुआ है। गांधीजी से वह मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए आई थीं। "अगणित लोग आपको पूजते हैं, आपकी आज्ञा पर चलते हैं, फिर उनसे आप इस संबंध में क्यों नहीं कहते? उनके लिए आप कोई ऐसा मंत्र क्यों नहीं देते कि जिससे वे संमार्ग पर चलना सीखें?"—यह वह चाहती थीं। "देश के लाखों स्त्री-पुरुषों का हित आपने किया है, तो फिर इस विषय में भी आप कुछ कीजिए।" यह उनकी मांग थी। पहले दिन अच्छी तरह बात करने के बाद जब वह तृप्त नहीं हुई तो दूसरे दिन भी उन्होंने उतनी देर तक बातें कीं। अब वे अपने लेख में यह लिखती हैं कि गांधीजी को तो भारत की महिलाओं का कुछ पता नहीं; क्योंकि उन्होंने तो सारी बात-चीत में दो ऐसी बेहूदी बातें कीं कि जिनसे उनका अज्ञान प्रकट होगया। गांधीजी ने इस बात-चीत में अपनी आत्मा निचोड़ दी थी, अपनी आत्म-कथा के कितने ही प्रकरण हृदयंगम भाषा में बताये थे; किन्तु उन सबका निष्कर्ष इस महिला ने यह निकाला कि गांधीजी को स्त्रियों की मनोवृत्ति का कुछ ज्ञान ही नहीं।

गांधीजी से श्रीमती सेंगर स्त्रियों के लिए एक उद्धारक मंत्र लेना चाहती थीं, और वह मंत्र उन्हें मिला; पर वह तो असल में यह चाहती थीं कि उनके अपने मंत्र पर गांधीजी मोहर लगा दें। इसलिए वह सुवर्ण मंत्र उन्हें

दो कौड़ी का मालूम हुआ। उन्हें भले ही वह दो कौड़ी का मालूम हुआ हो; पर भारत की स्त्रियों को वह मंत्र देना ज़रूरी है, उन्हें वह कौड़ी मोल का मालूम नहीं पड़ेगा। गांधीजी ने तो उनसे बार-बार विनय करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात मिल सकती है। मेरे और आपके तत्त्व-ज्ञान में ज़मीन-आसमान का अंतर है। इनसब बातों को उस समय तो उन्होंने अच्छा महत्त्व दिया, पर खुद उन्होंने जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमें उन्हें ज़रा भी महत्त्व नहीं दिया।

गांधीजी ने तो पीड़ित स्त्रियों के लिए यह सुवर्ण मंत्र दिया था कि—"मैंने तो अपनी स्त्री के गज़ से ही तमाम स्त्रियों का माप निकाला है। दक्षिण अफ्रिका में अनेक बहनों से मैं मिला—यूरोपीय और भारतीय दोनों से ही। भारतीय स्त्रियों से तो मैं सभीसे मिल चुका था, ऐसा कहा जा सकता है, क्योंकि उनसे मैंने काम लिया था। सभीसे मैं डोंडी पीट-पीटकर कहता था कि तुम अपने शरीर की—आत्मा की तरह शरीर की भी—स्वामिनी हो, तुम्हें किसीके वश में होकर नहीं बरतना है, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति तुमसे कुछ नहीं करा सकता, लेकिन बहुत-सी बहनें अपने पति से 'ना' नहीं कह सकतीं। इसमें उनका दोष नहीं। पुरुषों ने उन्हें गिराया है, पुरुषों ने उनके पतन के लिए अनेक तरह के जाल रचे हैं, और उन्हें बांधने की जंजीर को भी उन्होंने सोने की जंजीर का नाम दे रखा है। इसलिए वे बेचारी पुरुष की ओर आकर्षित हो गई हैं। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है, वह यह कि वे पुरुषों का प्रतिरोध करें। यह वे उन्हें साफ-साफ बतला दें कि उनकी इच्छा के विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर संतति का भार नहीं डाल सकते। इस प्रकार का प्रतिरोध कराने में अपने जीवन के शेष वर्ष यदि मैं खर्च कर सकूं तो फिर संतति-निग्रह-जैसी बात का कोई प्रश्न नहीं रहता। पुरुष यदि पशु-वृत्ति लेकर उनके पास जावें तो वे स्पष्ट रूप से 'ना' कह दें। यह शक्ति अगर उनमें आजाय तो फिर कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं। यहां हिन्दुस्तान में तो संतति-निग्रह का प्रश्न ही नहीं रहेगा। सभी पुरुष तो पशु हैं नहीं। मैंने ही तो अपने निजी संपर्क में आई हुई अनेक स्त्रियों को यह प्रतिरोध की कला सिखाई

है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रियां यह प्रतिरोध करना ही नहीं चाहतीं।....मेरा तो यह विश्वास है कि ६६ प्रतिशत स्त्रियां बिना किसी कटुता के अपने प्रेम से ही पतियों से यह प्रार्थना कर सकती हैं कि हमारे ऊपर आप बलात्कार न करें। यह चीज़ असल में उन्हें सिखाई नहीं गई, न माता-पिता ने ही सिखाई, न समाज-सुधारकों ने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखे हैं कि जिन्होंने अपने दामाद से यह बात की है, और कुछ अच्छे पति भी देखने में आये हैं कि जिन्होंने अपनी स्त्री की रक्षा की है। मेरी तो सौ बात की एक बात है कि स्त्रियों को प्रतिरोध का जो जन्म-सिद्ध अधिकार है, उसका उन्हें निर्बाध रीति से उपयोग करना चाहिये।"

मगर यह बात श्रीमती सेंगर को बेहुदी-सी मालूम हुई। गांधीजी के आगे तो उन्होंने नहीं कहा, पर अपने लेख में वह कहती हैं कि इस सारी बात से गांधीजी का अज्ञान ही प्रकट होता है, क्योंकि स्त्रियों में इस तरह का प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं। आज स्त्रियां यह प्रतिरोध नहीं करतीं, यह तो गांधीजी भी खुद मानते हैं, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारक का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह स्त्रियों को इस तरह का प्रतिरोध करने की शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिंसा की दावाग्नि महात्मा ईसा के ज़माने में भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होंने उपदेश दिया प्रेम का, अहिंसा का। उस उपदेश का पालन आज भी कम ही होता है, पर इससे यह कोई नहीं कहता कि महात्मा ईसा को मानव-समाज का ज्ञान न था।

श्रीमती सेंगर बम्बई की चालियों में कुछ स्त्रियों से मिलकर आई थीं, और कहतीं थीं कि उन स्त्रियों के साथ बात करने पर उन्हें ऐसा लगा कि उन स्त्रियों को यदि संतति-निग्रह के साधन प्राप्त हो जायं तो उन्हें बड़ी खुशी हो। ईश्वर जाने, वे कहां किस चाली में गई थीं, और उनका दुभाषिया कौन था! मगर गांधीजी ने तो उनसे यह कहा कि 'हिंदुस्तान के गांवों में आप जायं तो आपके संतति-निग्रह के इन उपायों की वे लोग बात भी सहन नहीं करेंगी। आज इनी-गिनी पढ़ी-लिखी स्त्रियों को आप भले ही बहका सकें; पर इससे आप यह न मान लें कि हिंदुस्तान की स्त्रियों की ऐसी ही मनोवृत्ति है।"

लेकिन श्रीमती सेंगर को ऐसा मालूम हुआ कि इस प्रतिरोध से तो गार्हस्थ्य जीवन में कलह बढ़ेगा, स्त्रियां अप्रिय हो जायंगी, पति-पत्नी के विवाहित जीवन की सुगंध और सुंदरता नष्ट हो जायगी। बात तो यह थी कि इस प्रतिरोध से यह सब होगा, यह बात नहीं, पर बिना शरीर-संबंध का विवाहित जीवन ही शुष्क हो जाता है, ऐसा वह मानती हैं। इसलिए शरीर-संबंध के विरुद्ध यह विद्रोह की सलाह ही उनके गले नहीं उतरती। अमेरिका के कुछ उदाहरण उन्होंने गांधीजी के आगे रक्खे और बतलाया कि "देखिए, इन पति-पत्नियों का जीवन अलग-अलग रहने से कंटकमय होगया था; पर उन्होंने संतति-निग्रह करना सीखा और इससे वे लोग विवाहित जीवन का आनंद भी उठा सके और उनका जीवन भी सुखी हुआ।" गांधीजी ने कहा, "मैं आपको पचासों उदाहरण दूसरे प्रकार के दे सकता हूं। शुद्ध संयमी जीवन से कभी दुःख की उत्पत्ति नहीं हुई; किंतु आत्म-संयम तो एक खरी वस्तु है। आत्म-संयम रखनेवाला व्यक्ति अपने जीवनमात्र को जबतक संयत नहीं करता तबतक उसमें वह सफल हो ही नहीं सकता। मेरा तो यह अटल विश्वास है कि आपने जो उदाहरण दिये हैं वे तो संयम-हीन, बाह्य त्याग करके अंतर से विषय का सेवन करनेवालों के उदाहरण हैं। उन्हें यदि मैं संतति-निग्रह के उपायों की सिफारिश करूं तो उनका जीवन तो और भी गंदा हो जाय।

कुंवारे स्त्री-पुरुषों के लिए तो यह साधन नरक का द्वार खोल देंगे। इस विषय में गांधीजी को शंका ही नहीं थीं। उन्होंने अपने अनुभव भी सुनाये, मगर श्रीमती सेंगर की वर्धा की बातचीत से यह जान पड़ा कि वह कुंवारे पुरुषों के लिए इन उपायों की सिफारिश नहीं कर रही हैं। उन्होंने तो इतना पूछा कि "विवाहितों के लिए भी क्या आप इन साधनों की अनुमति नहीं देते ?" गांधीजी ने कहा, "नहीं, विवाहितों का भी यह साधन सत्यानाश करेंगे।" श्रीमती सेंगर ने अपने लेख में जो दलील इसके विरुद्ध रखी है, वह दलील उन्होंने बातचीत में नहीं दी थी। वह लिखती हैं— "यदि संतति-निग्रह के साधन से ही मनुष्य अत्यंत विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हों, तब तो गर्भाधान के बाद के नौ मास में भी अतिशय विषय और व्यभिचार के लिए क्या गुंजाइश नहीं रहती ?" दलील की खातिर तो यह

दलील की जा सकती है; पर मालूम होता है कि श्रीमती सेंगर ने इस बात का विचार नहीं किया कि स्त्री-जाति के लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही दबाई हुई अथवा एकाध अत्यंत विषयांध स्त्री को छोड़कर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पति के भी विषय-वासना के वश होती है?"

मगर बात असल में यह थी की श्रीमती सेंगर और गांधीजी की मनोवृत्तियों में पृथ्वी-आकाश का अंतर था। बातचीत में विषयेच्छा और प्रेम की चर्चा चली। गांधीजी ने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम ये दोनों अलग-अलग चीज़ें हैं। श्रीमती सेंगर ने भी यही बात कही। गांधीजी ने अपने अनुभव का प्रकाश डालकर कहा कि "मनुष्य अपने मन को चाहे जितना धोखा दे; पर विषय विषय है, और प्रेम प्रेम है। काम-रहित प्रेम मनुष्य को ऊंचा उठाता है, और काम-वासनावाला संबंध मनुष्य को नीचे गिराता है।" गांधीजी ने संतानोत्पत्ति के लिए किये हुए धर्म्य संबंध का अपवाद कर दिया। उन्होंने दृष्टांत देकर समझाया कि "शरीर-निर्वाह के लिए हम जो कुछ खाते हैं, वह आहार नहीं; अस्वाद नहीं किंतु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझाने के लिए नहीं खाता-पीता; किंतु केवल अपनी विषय-लोलुपता के वश होकर ही इन चीज़ों को खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध संतानोत्पत्ति के लिए पति-पत्नी जब इकट्ठे होते हैं तब उस संबंध को प्रेम-संबंध कहते हैं, संतानोत्पत्ति की इच्छा के बिना जब वह इकट्ठे होते हैं तो वह प्रेम नहीं, भोग है।"

श्रीमती सेंगर ने कहा, "यह उपमा ही मुझे स्वीकार्य नहीं।"

गांधीजी—"आपको यह क्यों स्वीकार्य हो? आप तो संतानेच्छा-रहित संबंध को भी आत्मा की भूख मानती हैं, इसलिए मेरी बात क्यों आपके गले उतरे?"

श्रीमती सेंगर—"हां, मैं उसे आत्मा की भूख मानती हूं। मुख्य बात यह है कि भूख किस तरह तृप्त की जाय? तृप्ति के परिणाम-स्वरूप संतान हो या न हो, यह गौण बात है। अनेक बच्चे बिना इच्छा के ही उत्पन्न होते हैं और शुद्ध संतानोत्पत्ति के लिए तो कौन दंपति इकट्ठे होते होंगे। यदि शुद्ध संतानोत्पत्ति के लिए ही इकट्ठे हों तो पति-पत्नी को

जीवन में तीन-चार बार ही विषयेच्छा को तृप्त करके संतोष मानना पड़े। और यह तो ठीक बात नहीं कि संतानेच्छा से जो संबंध किया जाय, वह शुद्ध प्रेम है और संतानेच्छा-रहित संबंध विषय-संबंध है।"

गांधीजी—"मैं यह अनुभव की बात कहता हूं कि मैंने अमुक संतानें होने के बाद अपने विवाहित जीवन में शरीर-संबंध बंद कर दिया। संतानेच्छारहित सभी संबंध विषय-संबंध है, ऐसा आप कहना चाहें तो मैं यह क़बूल कर सकता हूं। मेरा तो एक अनुभव आईना-सा स्पष्ट है कि मैं जब-जब शरीर-संबंध करता था, तब-तब हमारे जीवन में सुख एवं शांति और विशुद्ध आनंद नहीं होता था। एक आकर्षण था सही; किंतु ज्यों-ज्यों हमारे जीवन में—मेरे में—संयम बढ़ता गया, त्यों-त्यों हमारा जीवन अधिक उन्नत होता गया। जबतक विषयेच्छा थी, तबतक सेवा-शक्ति शून्यवत् थी। विषयेच्छा पर चोट की कि तुरंत सेवा-शक्ति उत्पन्न हुई। काम नष्ट हुआ और प्रेम का साम्राज्य जमा।" गांधीजी ने अपने जीवन के एक अन्य आकर्षण की भी बात की। उस आकर्षण से ईश्वर ने उन्हें किस तरह बचाया, यह भी उन्होंने बतलाया, पर ये तमाम अनुभव की बातें श्रीमती सेंगर को अप्रस्तुत मालूम हुईं। शायद न मानने योग्य मालूम हुई हों तो कोई अचरज नहीं, क्योंकि अपने लेख में वह कहती हैं कि "कांग्रेस के मुट्ठी-भर आदर्शवादी कार्यकर्त्ता अपनी विषयेच्छा को दबाकर सेवा-शक्ति में भले ही परिणत कर सके हों; पर उन इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर उन्हें तो हम लोगों की बातें करनी थीं।" पर जहांतक मेरा खयाल है, गांधीजी ने तो कांग्रेस या कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं का सारी बात-चीत में कोई हवाला ही नहीं दिया था; पर श्रीमती सेंगर यह भूल जाती हैं कि तमाम नैतिक उन्नति 'मुट्ठी-भर आदर्शवादियों' के आचरण की बदौलत ही हुई है। सच बात तो यह है कि गांधीजी ने बतौर स्वप्न-द्रष्टा के बात नहीं की थी। गांधीजी खुद एक नीति-शिक्षक हैं और श्रीमती सेंगर भी नीति-शिक्षिका हैं; वह स्वयं एक समाज-सेवक हैं और श्रीमती सेंगर भी समाज-सेविका हैं, यह मानकर ही सारा संवाद चला था, और यह होते हुए भी व्यवहार की भूमिका पर खड़े होकर भी उन्होंने उनसे बातें की थीं। उन्होंने कहा, "नहीं, बतौर नीति-रक्षक के मेरा और आपका कर्त्तव्य तो यह है कि इस

संतति-निग्रह को छोड़कर अन्य उपायों का आयोजन करें। जीवन में कठिन पहेलियां तो आयंगी ही; पर वे किसी मनचाहे अनुकूल साधन से हल नहीं की जा सकतीं। इन संतति-निग्रह के साधनों को अधर्म्य समझकर आप चलेंगी तभी आपको अन्य साधन सूझेंगे। तीन-चार बच्चे पैदा हो जाने के बाद माँ-बाप को अपनी विषय-वासना शांत कर देनी चाहिए, इस प्रकार की शिक्षा हम क्यों न दें, इस तरह का क़ानून हम क्यों न बनावें? विषय-भोग खूब तो भोग लिया, चार-चार बच्चे हो जाने के बाद भोग-वासना को अब क्यों न रोका जाय? बच्चे मर जायं और बाद को ज़रूरत हो तो संतान उत्पन्न करने की ग़रज़ से पति-पत्नी फिर से इकट्ठे हो सकते हैं। आप ऐसा करेंगी तो विवाह-बंधन को आप ऊँचे दरजे पर ले जायंगी। संतति-निग्रह की सलाह मुझसे कोई स्त्री लेने आये तो मैं उससे यही कहूंगा कि 'यह सलाह, बहन, तुम्हें मेरे पास मिलने की नहीं; और किसीके पास जाओ।' पर आप तो संतति-निग्रह के धर्म का आज प्रचार कर रही हैं। मैं आपसे यह कहूंगा कि इससे आप लोगों को नरक में ले जाकर पटकेंगी, क्योंकि उनसे आप यह तो कहेंगी नहीं कि 'बस, अब इससे आगे नहीं।' इसमें आप कोई मर्यादा तो रख नहीं सकेंगी।"

वर्धा में जो बातचीत हुई उसमें तो श्रीमती सेंगर ने इतने अधिक मित्र-भाव से, इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्ति से बर्ताव किया कि कुछ पूछिए नहीं। गांधीजी से उन्होंने कहा था, "पर आप कोई उपाय भी बतलाइए। संयम मैं भी चाहती हूं, संयम मुझे अप्रिय नहीं; पर शक्य संयम का ही पालन हो सकता है न?" सत्य-शोधक की नम्रता से गांधीजी ने कहा, "निर्बल मनुष्य के लिए एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हाल ही में एक मित्र की भेजी हुई पुस्तक में देखा है। उसमें यह सलाह दी है कि ऋतुकाल के बाद अमुक दिनों को छोड़कर विषय-सेवन किया जाय। इस तरह भी मनुष्य को महीने में १०–१२ दिन मिल जाते हैं और संतानोत्पादन से वह बच सकता है। इस उपाय में बाकी के दिन तो संयम पालन में ही जायंगे, इसलिए मैं इस उपाय को सहन कर सकता हूं।"

पर यह उपाय श्रीमती सेंगर को तो नीरस ही मालूम हुआ होगा; क्योंकि इस उपाय का उन्होंने न तो अपने लेख में ही कहीं उल्लेख किया है;

न अपने भाषणों में ही। इस उपाय की ही बात करें तो संतति-निग्रह के साधन बेचनेवाले भीख मांगने लगें और तीसों दिन जिन्हें भोग-वासना सताती हो, उन बेचारों की क्या हालत हो ?

फिर श्रीमती सेंगर तो ऐसे दुखियों की दुःख-भंजक ठहरीं। ऐसे दुखियों का मोक्ष-साधन संतति-निग्रह के सिवा और क्या हो सकता है। मैं यह कटाक्ष नहीं कर रहा हूं। श्रीमती सेंगर ने अमेरिका में सर्वधर्म-परिषद् के आगे जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने संतति-निग्रह को मोक्ष-साधन का रूप दिया है। उस भाषण में उन्होंने न तो संयम की बात की है; न केवल विवाहित दंपतियों की। वहां तो उन्होंने बात की है उस अमेरिका की—जहां हर साल २० लाख भ्रूण-हत्याएं होती हैं। इतनी बाल हत्याएं रोकने के लिये संतति-निग्रह के साधनों के सिवा दूसरा उपाय ही क्या!! पर अभी ज़रा और आगे बढ़ें तो कुछ दूसरी ही बात मालूम होगी, और वह यह कि इन विदेशी प्र चारिकाओं की चढ़ाई भारत की स्त्रियों के हितार्थ नहीं; किंतु दूसरे ही हेतु से हो रही है। अमेरिका के उस भाषण में ही उन्होंने स्पष्ट कहा था कि—"जापान की आबादी कितनी बढ़ रही है! वहाँ तो जन-वृद्धि की मात्रा पहले ही बढ़ी-चढ़ी थी, और अब तो वह उसे भी पार कर रही है। इसी तरह अगर यह बढ़ती गई तो इन एशिया के राष्ट्रों का त्रास पृथ्वी कैसे सहन कर सकेगी ? राष्ट्रसंघ को इसके विरुद्ध कोई ज़बर्दस्त प्रतिबंध सहन ही होगा। अपनी इतनी बड़ी प्रजा के लिए खाने की तंगी होने से जापान को और भी देशों की ज़रूरत होगी, और भी मंडियाँ चाहनी पड़ेंगी, इसीसे वह पवित्र संधियों को भंग कर रहा है और विश्व-व्यापी युद्ध का बीज बो रहा है।" जापान आज किस अप्रिय रीति से पेश आ रहा है, उसे देखते हुए तो जापान का यह उदाहरण चतुराई से भरा हुआ उदाहरण है; पर श्रीमती सेंगर को तो इस डर का भयंकर स्पप्न दबा रहा है कि संतित-निग्रह न करनेवाले एशियाई राष्ट्र यूरोपीय प्रजा के लिए ख़तरनाक हो सकते हैं। ऐसे जन-हितैषियों की चढ़ाई से हम जितनी ही जल्दी सजग हो जायं उतना ही अच्छा।

—महादेव देसाई

: ४ :

श्रीमती सेंगर का पत्र

श्रीमती सेंगर ने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है—

"अपने लेख ('विदेशियों के नए-नए हमले') में मेरे और गांधीजी के बीच हुई बातचीत देते हुए आप कहते हैं कि 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के अपने लेख में मैंने उस बातचीत का सिर्फ एक ही पहलू रखा है। आपकी यह बात बिल्कुल ठीक है। उस लेख में दरअसल, उसीपर मैं विचार भी करना चाहती थी।

"मुझे यह भी बता देना चाहिये कि उस लेख को छपने के लिए भेजने से पहले मैंने आपकी और गाँधीजी की एक प्रिय और वफादार मित्र म्यूरियल लेस्टर को पढ़कर सुना दिया था और जिसे आप 'परदे की ओट में दुर्भाव' कहते हैं वह बात उन्होंने ही सुझाई थी। कृपया इस बात का यक़ीन रखें कि जो बहादुर स्त्री-पुरुष हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए प्रयत्न कर रहे हैं उन सबके प्रति मेरे मन में अत्यधिक श्रद्धा और संमान का ही भाव है। मैंने अभीतक जो कुछ किया है उसपर आप नज़र डालें तो हिन्दुस्तान में आज़ादी प्राप्त करने के लिए किये जानेवाले प्रयत्नों की मदद करने की ग़रज़ से १९१७ में जो पहला दल अमेरिका में संगठित हुआ था, उसमें मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

"एक और बात भी आपके लेख में ऐसी है, जिसमें, मैं समझती हूं, आप ग़लती पर हैं। वह यह कि आप उसमें यह ज़ाहिर करते मालूम पड़ते हैं कि हमारी बातचीत में गांधीजी ने (ऋतु-काल के बाद कुछ दिनों को छोड़कर) ऐसे दिनों में समागम के उपाय को स्वीकार कर लिया है जिनमें गर्भ रहने की संभावना प्रायः नहीं होती। मेरे खयाल में आप टाइप किये

हुए वक्तव्य को देखें तो उसमें उनका यह कथन आपको मिलेगा, 'यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है।' हालांकि मैंने और निश्चित बात कहने का आग्रह किया, लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसी हालत में आपने सार्वजनिक रूप से जो कथन उनका बताया है, मेरे खयाल में वह आपने ठीक नहीं किया। और अंत में आपने प्रचारकों के 'व्यापार' की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गाँधीजी आपसे सहमत होंगे। वह वाक्य और जिस भावना का वह सूचक है वह, आप-जैसे व्यक्ति के लायक नहीं है, जिसने कि निःस्वार्थ भाव से जन-सेवा का कार्य किया है।

"संतति-निग्रह के कार्यकर्त्ता जिस बात को मानव-स्वतंत्रता एवं प्रगति के लिए मनुष्य-मात्र का मौलिक स्वत्व मानते हैं, उसके लिए निःस्वार्थ भाव से और बिना किसी परिश्रम के उन्होंने संग्राम किया है और अब भी कर रहे हैं। फिर जो अपना विरोधी हो उसके बारे में योंही कोई ऐसी बात कह देना सर्वथा अनुचित, असौजन्यपूर्ण और असत्य है, जो दरअसल बिल्कुल बेबुनियाद हो।"

इसमें जहांतक 'परदे की ओट में दुर्भाव' से संबंध है, मैं प्रसन्नता से और कृतज्ञता-पूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हूं; लेकिन यह मानना होगा कि जिस शोखी और तुनकमिज़ाजी के लहजे में वह लेख लिखा हुआ है, उससे यही भाव टपकता है, हालांकि अब मैं यह मान लेता हूं कि उनका ऐसा भाव नहीं था।

दूसरी गलती के बारे में, श्रीमती सेंगर को यह याद रखना चाहिए कि उन्होंने तो 'बातचीत के सिर्फ़ एक पहलू को ही लिया है; लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि यह कहकर कि ऋतु-काल के बाद के कुछ दिनों को छोड़कर ऐसे दिनों में समागम की बात गाँधीजी सहन कर लेंगे, जिनमें गर्भ रहने की संभावना प्रायः नहीं होती; क्योंकि इसमें आत्म-संयम की थोड़ी-बहुत भावना तो है, मैंने उन्हें किसी ऐसी स्थिति में डाल दिया है जो उन्हें पसंद नहीं है। मैं तो सिर्फ़ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधी की बात को भी, जहांतक संभव हो, किस तत्परता के साथ गाँधीजी स्वीकार कर लेते हैं। उन्होंने जिस कारण यह

कहा कि 'यह बात मुझे इतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है,' वह इस विषय में बड़ी मुद्दे की बात है; क्योंकि श्रीमती सेंगर के उपाय (कृत्रिम संतति-निग्रह) से जहाँ महीने के सभी दिनों में विषय-भोग में प्रवृत्त होने की छुट्टी मिल जाती है वहां इस विशेष उपाय से किसी हदतक तो आत्म-संयम होता ही है।

'व्यापार' वाली बात, मैं समझता हूं, श्रीमती सेंगर को बहुत बुरी लगी है; लेकिन खुद श्रीमती सेंगर पर मैंने ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया है, न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था; क्योंकि मुझे मालूम है, उन्होंने अपने उद्देश्य के लिए बड़ी बहादुरी और निस्स्वार्थ भाव से लड़ाई लड़ी है, मगर यह बात बिल्कुल ग़लत भी नहीं है कि संतति-निग्रह के लिए आजकल जो प्रचार हो रहा है वह तथा संतति-निग्रह के प्रायः सभी उत्साही समर्थकों के यहाँ बिक्री के लिए इस संबंध का जो आकर्षक साहित्य या औज़ार आदि होते हैं वह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इन सबसे उस उद्देश्य को तो हानि ही पहुंचती है जिसके लिए कि श्रीमती सेंगर निःस्वार्थ भाव से इतना उद्योग कर रही हैं।

—महादेव देसाई

: ५ :

स्त्रियों को स्वर्ग की देवियां न बनाइए[1]

गांधीजी उस विषय पर आये, जिस विषय पर कि विषय-समिति में उन्होंने अपने विचार प्रकट किये थे। वायु-मंडल अनुकूल नहीं था, इसलिए उस विषय पर वे कोई प्रस्ताव नहीं ला सके। 'ज्योति-संघ' नामक आंदोलन की संचालिका बहनों ने उन्हें एक पत्र लिखा था। इसीको लेकर उन्होंने कुछ कहा। इस पत्र के साथ एक प्रस्ताव भी था, जिसमें उन्होंने उस वृत्ति की निंदा की, जो आजकल स्त्रियों का चित्रण करने के विषय में वर्तमान साहित्य में चल पड़ी है। गांधीजी को लगा कि उनकी शिकायत में काफ़ी बल है और उन्होंने कहा, "इस आरोप में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आजकल के लेखक स्त्रियों का बिल्कुल झूठा चित्रण करते हैं। जिस अनुचित भावुकता के साथ स्त्रियों का चरित्र-चित्रण किया जाता है, उनके शरीर-सौंदर्य का जैसा भद्दा और असभ्यतापूर्ण वर्णन किया जाता है, उसे देखकर इन कितनी बहनों को घृणा होने लग गई है। क्या उनका सारा सौंदर्य और बल केवल शारीरिक सुंदरता ही में है? पुरुषों की लालसा-भरी विकारी आंखों की तृप्ति करने की क्षमता में ही है? इस पत्र की लेखिकाएं पूछती हैं और उनका पूछना बिल्कुल न्याय्य है कि क्यों हमारा हमेशा इस तरह वर्णन किया जाता है, मानों हम कमज़ोर और दब्बू औरतें हों, जिनका कर्तव्य केवल यही है कि घर के तमाम हलके-से-हलके काम करती रहें और जिनके एकमात्र देवता

[1]गुजरात साहित्य-परिषद् की कार्यवाही का अंश

उनके पति हैं ! जैसी वे हैं वैसी ही उन्हें क्यों नहीं बताया जाता ? वे कहती हैं, न तो हम स्वर्ग की अप्सराएं हैं, न गुड़िया हैं, और न विकार और दुर्बलताओं की गठरी ही हैं।' पुरुषों की भाँति हम भी तो मानव-प्राणी ही हैं। जैसे वे हैं वैसी ही हम भी हैं। हममें भी आजादी की वही आग है। मेरा दावा है कि उन्हें और उनके दिल को मैं काफ़ी अच्छी तरह जानता हूं। दक्षिण अफ्रीका में एक समय मेरे आस-पास स्त्रियां-ही-स्त्रियां थीं। मर्द सब उनके जेलों में चले गये थे। आश्रम में कोई ६० स्त्रियां थीं। और मैं उन सब लड़कियों और स्त्रियों का पिता और भाई बन गया था। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे पास रहते हुए उनका आत्मिक बल बढ़ता ही गया, यहांतक कि अंत में वे सब खुद-ब-खुद जेल चली गईं।

मुझ से यह भी कहा गया है कि हमारे साहित्य में स्त्रियों को खामखा देवता के सदृश वर्णन किया गया है। मेरी राय में इस तरह का चित्रण भी बिल्कुल ग़लत है। एक सीधी-सी कसौटी मैं आपके सामने रखता हूं। उनके विषय में लिखते समय आप उनकी किस रूप में कल्पना करते हैं ? आपको मेरी यह सूचना है कि आप जब काग़ज पर क़लम चलाना शुरू करें, उससे पहले यह ख याल कर लें कि स्त्री-जाति आपकी माता है। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आकाश से जिस तरह इस प्यासी धरती पर सुन्दर शुद्ध जल की वर्षा होती है, उसी तरह आपकी लेखनी से भी शुद्ध से-शुद्ध साहित्य-सरिता बहने लगेगी। याद रखिए, एक स्त्री आपकी पत्नी बनी, उससे पहले एक स्त्री आपकी माता थी। कितने ही लेखक स्त्रियों की आध्यात्मिक प्यास को शांत करने के बजाय उनके विकारों को जाग्रत करते हैं। नतीजा यह होता है कि बेचारी कितनी ही भोली स्त्रियां यही सोचने में अपना समय बरबाद करती रहती हैं कि उपन्यासों में चित्रित स्त्रियों के वर्णन के मुक़ाबले में वे किस तरह अपने को सजा और बना सकती हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि साहित्य में उनका नख-शिख वर्णन क्या अनिवार्य है ? क्या आपको उपनिषदों, कुरान और बाइबिल में ऐसी चीज़ें मिलती हैं ? फिर भी क्या आपको पता नहीं कि बाइबल को अगर निकाल दें तो अंग्रेजी

भाषा का भंडार सूना हो जायगा। उसके बारे में कहा जाता है कि उसमें तीन हिस्से बाइबिल है और एक हिस्सा शेक्सपियर। कुरान के अभाव में अरबी को सारी दुनिया भूल जायगी और तुलसीदास के अभाव में ज़रा हिन्दी की कल्पना तो कीजिए। आजकल के साहित्य में स्त्रियों के विषय में जो-कुछ मिलता है, ऐसी बातें आपको तुलसीकृत रामायण में मिलती हैं ?"

●